10/82

सोमसी

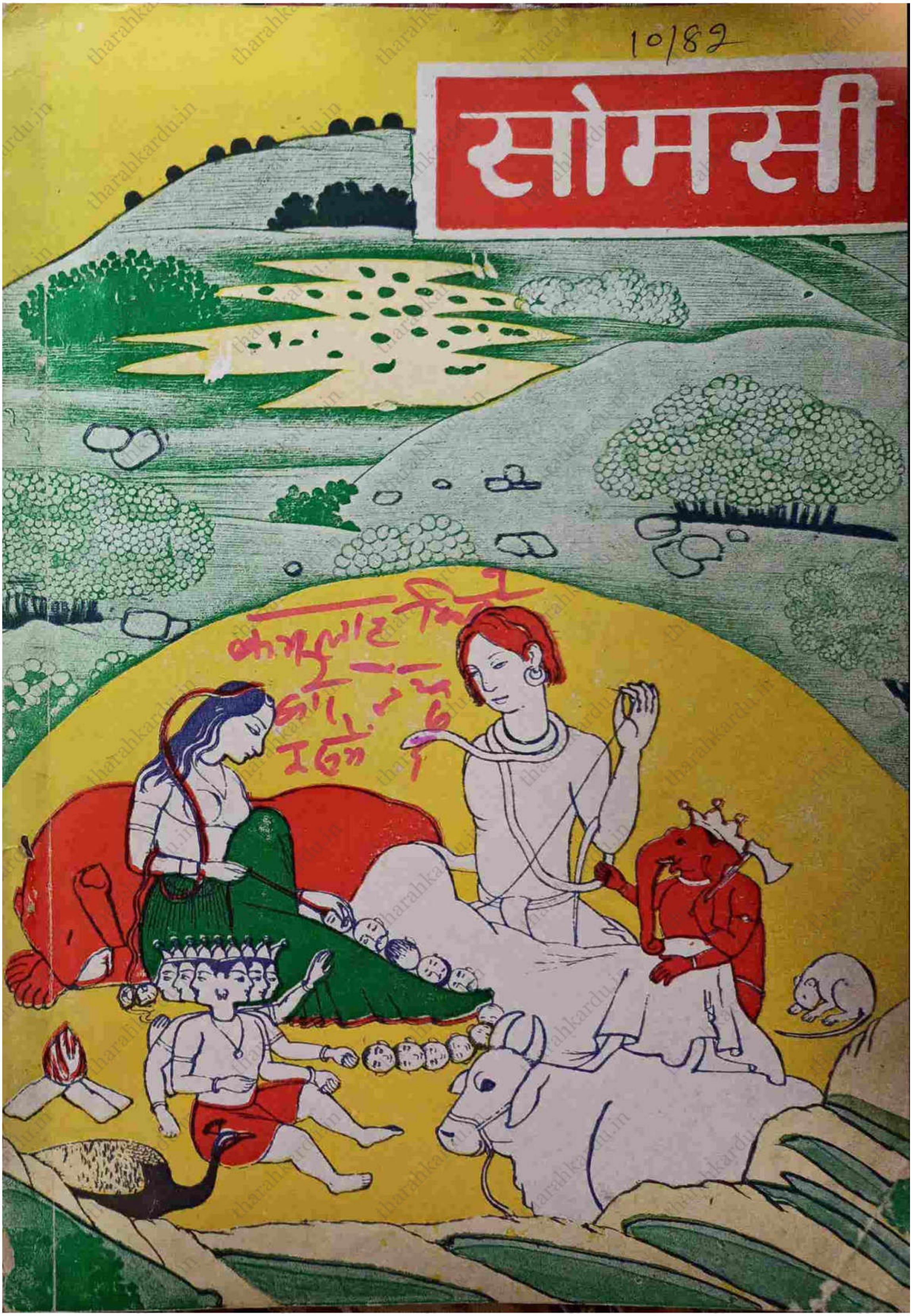

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी का, त्रैमासिक पत्र

बर्ष 8	अक्तूबर, 1982	अंक 4

मुख्य सम्पादक,
अध्यक्ष अकादमी,
सन्त राम शर्मा

सम्पादक
मौलूराम ठाकुर
सचिव

सहयोगी
रमाकान्त जोशी
अनुसंधान अधिकारी

आवरण
ओमप्रकाश

३२

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

वार्षिक चन्दा १२ रुपये **एक प्रति ३ रुपये**

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी

क्लिफ-एन-डी-एस्टेट, शिमला—१७१००१

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	हिमाचल के प्राचीन कबीले	डा० तेज राम शर्मा	
२.	काव्य कानन में धौलाधार	डा० मनोहर लाल	६
३.	कांगड़ी बोली में आक्षरिक संरचना	श्रीमती मधुबाला	१७
४.	हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिला का कमलाह गढ़	डा० काशी राम आत्रेय	२४
५	बूढ़ा केदार—एक पौराणिक स्थल	हेमप्रभा शर्मा	३४
६.	कांगड़ा के मन्दिरों का ऐतिहासिक और कलात्मक महत्व	डा० शमी शर्मा	३७
७	बिश्शु मेला	पूर्ण सिंह ठाकुर	४१
८.	हिमाचल प्रदेश और नाग पूजन	खेम राज गुप्त सागर	४४
९.	कांगड़ा का ऐतिहासिक शैव तीर्थ त्रिलोक पुर	डॉ० युगल किशोर	४७
१०.	कादम्बरी और कुलूत देश की राजकुमारी-पत्रलेखा	डॉ० गिरिधर योगेश्वर	५०
११.	मासती गांथो	रूप कुमार शर्मा	५४
१२.	गुरु गोरख नाथ की विचार धारा का हिन्दी मध्यकालीन साहित्य पर प्रभाव	डॉ वेद प्रकाश अग्नि	५९
१३.	सिरमौरी गीतों में कारुण्य एवं आक्रोश	आचार्य प्रेम लाल गौतम	६४
१४.	सौभाग्य एवं पुण्य का प्रतीक—तुलसी पूजा	शशि कान्त शास्त्री	६९
१५.	कांगड़ा का जनमानस एवं लोक देवता	रमेश मस्ताना	७२
१६.	शोध प्रबन्ध सार	डॉ० मनोहर लाल	८३
१७.	शोध प्रबन्ध सार	डॉ० शिव कुमार शर्मा	९५
१८.	पुस्तक समीक्षा	तुलसी रमण	१०५
१९.	अकादमी की गतिविधियां		१०८
२०.	अप्रैल से सितम्बर तक कवि सम्मेलन व गोष्ठियां		११७

tharahkardu.in

सम्पादकीय

भारत में भाषा-अध्ययन का आरम्भ प्रायः आर्यों के आगमन से ही किया जाता हैं । आर्य लोग भारत में एक बार नहीं आए बल्कि कई समूहों में आए होंगे, इस बात पर सभी विद्वान सहमत हैं। जब आर्य लोग भारत में आए तो यह निर्जन और गैर-आबाद क्षेत्र नहीं था। उनसे पूर्व भी लोग रहते थे। उनकी अपनी भाषा थी, रहन-सहन के अपने ढंग थे। सामाजिक गतिविधियों के अपने नियम थे। प्रागैतिहासिक काल में हिमालय के इस भूखण्ड में यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव, पिशाच, नाग आदि जातियों के होने की कल्पना की जाती है। कल्पना ही क्यों, हमारे प्राचीन साहित्य में स्थान-स्थान पर इनका उल्लेख भी मिलता है। पौराणिक अनुश्रुतियां विशेष रूप से इनमे सम्बन्धित है तथा विष्णु-पुराण, भागवतपुराण, मार्कण्डेयपुराण एवं स्कन्दपुराण के संदर्भों में इन जातियों को जिस क्षेत्र से सम्बन्धित बताया गया है, वह भारतवर्ष का हिमालयस्थित यही भूखण्ड है। भाषा-विकास के क्रमिक इतिहास में आर्य जाति की भाषा पर भारत के आदिवासियों अर्थात् अनार्यों की भाषा के प्रभाव का उल्लेख करते हुए प्रसिद्ध भाषा शास्त्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने कहा है कि "अनुलोम, प्रतिलोम विवाह द्वारा प्राचीन भारत में जहां एक ओर विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो रहा था, वहां दूसरी ओर आर्य तथा अनार्य भाषा एवं संस्कृति का भी संगम हो रहा था।"

आर्यों के भारत आने पर इन पूर्व-आर्य जाति के लोगों की अपनी भाषा अवश्य थी, और आर्य तथा अनार्य लोगों के बीच आदान प्रदान में दोनों की भाषाओं का स्पष्ट संपर्क रहा होगा। यह ठीक है कि संघर्ष में विजयी की हर बात पराजित पर प्रभावी होती है। साथ ही विजयी में अवश्य पराजित से अधिक गुण होंगे, तभी बाहर से आए लोग मूल निवासियों को पराधीन कर सके। और आर्य लोगों के अधिक सुसभ्य और शिष्ट होने में तो संदेह ही नहीं है । परन्तु इस संघर्ष में मूल निवासियों की भाषा पूर्णतः निष्कासित हुई हो, ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती है। भाषा तो क्या आदिवासियों के सामान्य दैनिक जीवन-पूजा-पाठ के रिवाजों को भी आर्य लोग पूर्णतः, समाप्त न कर सके थे, प्रत्युत उनका आर्यों के रिवाजों के साथ ऐसा समावेश हुआ कि वे आर्य होकर ही प्रचलित रहे। स्पष्टतः भाषा में यहां मूल निवासियों की बोलियों के अंश समाविष्ट हुए और आज तक चले आए हैं, और इस लम्बे समय के सम्पर्क में आज उन्हें पृथक करना कठिन है। फिर भी पहाड़ी भाषा में यक्ष, दैत्य, दानव, पिशाच, वानर, गन्धर्व, नाग आदि प्रागैतिहासिक जातियों की भाषा के अवशेषों से इन्कार नहीं किया जा सकता। स्थानीय परम्पराओं के अनुसार मानव शरीर या घर-गृह में पैठी प्रेतात्माओं ओपरा को निकालने के लिये गुरू, चेला, डलैहया (डाली चलाने वाला) या,जादू-टोनक, टानगिरी जो भाषा बोलता है, वह सचमुच राक्षसों की भाषा से कम क्या होगी। प्रेतात्मा के निवारण के लिए गूर, चेला या डलैहया द्वारा प्रयुक्त भाषा न वेद-मन्त्र है, न बंगाल का जादू, न बौद्धों, सिद्धों, गोरखनाथ पंथियों की भाषा। वास्तव में ऐसे उदाहरण भी हैं जहां एक गूर दूसरे की अथवा एक चेला या डलूहया दूसरे की उस समय की भाषा को नहीं समझता,और ये लोग इसे "प्रेत-भाखा" या "राखस बोली" ही कहते हैं। यह कौन सी भाषा है, इसका ज्ञान अभी तक सम्भव नहीं हो सका है। मूल अर्थ तो गूर-चेलों को भी नहीं आते। ये उनके रट्टे-रटाये मंत्र

हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनके पास आज तक सुरक्षित हो रहे हैं, परन्तु इस भाषा का बहुत बड़ा भाग समाप्त हो गया है। इस को जानने वाले इसे अपनी सबसे बहुमूल्य और गुप्त सम्पति समझते हैं और किसी को किसी शर्त पर बताते नहीं है, केवल अपने एकाध चेलों-गूरों तक सीमित रखने हैं, जो प्रायः उनके पुत्र या सगे सम्बन्धी होते हैं। यक्ष, दैत्य, दानव, पिशाच, राक्षस, चण्डाल आदि मानव जाति के रूप में हिमाचल प्रदेश में आजकल कहीं विद्यमान नहीं, परन्तु यहां की प्राचीन परम्पराओं के ये बड़ी मान्य एवं जानी-बूझी आत्माएं हैं, और दूत, दानू, घोघड़ा, पिशाच, राखस, चेटू आदि कई नामों से ये अब डर की वस्तुयें रह गई है। इन्हें अत्यन्त कष्टदायी शक्तियां समझा जाता है और इनकी पूजा भी की जाती है परन्तु केवल इसलिए कि ये अप्रसन्न न हो, या वे मानव-शरीर अथवा आबादी से दूर रहें।

यों तो भारत की सभी भाषाओं में आर्यों से पूर्व की भाषाओं के उदाहरण मिलते हैं परन्तु पहाड़ी भाषा के क्षेत्र में आर्यों के आगमन से पूर्व के आदिवासियों की भाषा के अवशेष विशेष महत्व रखते हैं। इसका स्पष्ट कारण यह है कि इस पर्वतीय क्षेत्र में अंदरुनी पहाड़ी आदिवासी आर्यों के प्रभाव से अधिक देर तक सुरक्षित रहे। आर्यों का इन पहाड़ियों में धीरे-धीरे प्रवेश हुआ, और जैसे प्रवेश देर से हुआ वैसे ही उनकी भाषा का भी उस समय की स्थानीय भाषाओं पर प्रभाव धीरे-धीरे तथा कम मात्रा में पड़ा। यह स्थिति भारत-भर की सभी भाषाओं के बारे में समुचित है। जो क्षेत्र अधिक दुर्गम एवं मैदानी भागों से दूरस्थ हैं, वहां आदिवासियों की मूल भाषा या सुरक्षित रही है या आर्य भाषा से कम प्रभावित हुई है। पहाड़ी भाषा का अभी कोई शब्दकोष तैयार नहीं हुआ है और न ही कोई प्राचीन अथवा अर्वाचीन साहित्य उपलब्ध है, और जो साहित्य हाल ही में देखने में आ रहा है वह इसकी वैज्ञानिक समीक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। परन्तु दैनिक प्रयोगों की भाषा से यह निश्चय से कहा जा सकता है कि पहाड़ी के लगभग चालीस प्रतिशत शब्द ऐसे है जिनका सीधा सम्बन्ध न स्पष्टतः संस्कृत से जोड़ा जा सकता है, न प्राकृत-अपभ्रंश से, न दरद-पेशाच से। जाहिर है कि इन शब्दों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उस भाषा से है जो आर्यों के भारत में प्रवेश करने से पहले यहां के मूल निवासियों की आम बोलचाल की भाषा थी। वैदिक युग से पहले का साहित्य आज उपलब्ध नहीं है, यदि होता तो सम्भवतः पहाड़ी भाषा की कई जटिल ध्वनियों और शब्दों के रहस्य से पर्दा उठ जाता। चूंकि न उस समय की भाषा का स्वरुप मिलता है और न आज की भाषा पर अभी कोई अध्ययन हुआ है, अतः यह समस्या अभी खोज का विषय बनी रहेगी। हिन्दी पर ठोस और गहन अध्ययन हुआ है, परन्तु हिन्दी जैसी परिनिष्ठित भाषा के बारे में भी श्री किशोरी दास वाजपेयी और डॉ० रामविलास शर्मा जैसे विद्वान यह विचार व्यक्त करते हैं कि हिन्दी की अनेक विशेषताओं का सम्बन्ध न वैदिक संस्कृत से है, न लौकिक संस्कृत से है, न अपभ्रंश से। इनका सम्बन्ध खड़ी बोली की किसी प्राचीन बोली से ही हो सकता है। यह बात पहाड़ी भाषा के बारे में न शतशः उचित है, बल्कि इसका पहाड़ी भाषा के क्षेत्र में अधिक महत्व है। जिन प्राकृतों से आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्भव माना जाता है उनमें से किसी में भी कुछेक विशेषताएं दिखाई नहीं देतीं। परन्तु ये मौलिक विशेषताएं अनायास नहीं आई हैं। ये जरूर इस भाषा के आदिवासियों की बोली के अवशेष हैं। उस बोली को चाहे हम कोल कहें, किरात, खश, मुण्डा या प्राकृत, परन्तु "जिस किसी में भी यह बात थी, उसका कोई रूप हमारे सामने नहीं है। कई कड़ियां टूटी हैं। कुछ भी हो, साहित्य में उपलब्ध प्राकृतों में से कोई भी ऐसी नहीं जिसे ····उद्गम माना जा सके"। अतः जिन विशेषताओं का स्त्रोत वर्तमान भाषाओं अथवा उन प्राचीन भाषाओं में जिनका साहित्य उपलब्ध है, नहीं मिलता उन्हें आदिवासियों की थाती समझना अधिक भूल नहीं है।

एम० आर० ठाकुर

हिमाचल के प्राचीन कबीले

—डा० तेज राम शर्मा

कबीला या जनजाति शब्द से तात्पर्य एक ऐसे जनसमूह से है जो सामाजिक, नृवंशिक या संस्कृति की दृष्टि से एक विशेष अलगाव रखता हो। कई बार जिस प्रदेश में ये कबीले रहते थे, अपने नाम से उस प्रदेश को भी विख्यात कर देते थे या कई बार किसी निवास-स्थान का नाम अपने ऊपर ले लेते थे। भौगोलिक सुविधा की दृष्टि में रख कर ये कबीले एक स्थान पर रहते थे या अन्य स्थानों पर भी चले जाते थे। समय से जिस प्रदेश में कोई जन या कबीला रहता था, वह उस कबीले का जनपद कहलाने लगा और नृवंश की बजाय उस जनपद में जन्म अथवा निवास को अधिक मान्यता दी जाने लगी।

इतिसाहकार, पुरातत्वविद और नृवंश-शास्त्री सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं कि आदिमानव प्राकृतिक सुविधाओं को देख कर पहाड़ों में नदियों की समीपता में रहा होगा क्योंकि तब अन्य स्थान घने जंगलों से आबाद थे। इन्हीं जनजातियों ने गणतन्त्रों को जन्म दिया होगा और राजतन्त्र से पूर्व गणतान्त्रिक शासन प्रणाली ही विद्यमान रही होगी।

हिमाचल प्रदेश को अनेक मिली-जुली जनजातियों का घर कहा जा सकता है जिनमें तिब्बती, बौद्ध, हिन्दू एवं मुस्लिम-ईरानी प्रभावों को गिनाया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश चार नदियों-चिनाव, रावी, व्यास और सतलुज से सिंचित प्रदेश है। और इसमें चम्बा, लाहुल और स्पिति, कांगड़ा, ऊना, कुल्लू, मण्डी, बिलासपुर, किन्नौर, महासु और सिरमौर जैसे महत्वपूर्ण स्थान अन्तर्गत हैं। फुक्स (२) और टी० एस० नेगी (३) ने जिन जनजातियों की गणना की है वे हैं, गद्दी, लाहुली, भोटिया, स्वांगल, डोम्ब, हेसिया-जाड और पंगवाल, किन्नर और गुज्जर आदि। इनमें ऐतिहासिक सूचि में केवल-किन्नर और गुज्जर ही आते हैं। हम यह कह सकते हैं कि सदियों में इन जनजातियों का प्रदेश के अन्य निवासियों में विलय हो गया या जिन-जिन प्रदेशों में ये कबीले बसते गये वहां के निवासियों के साथ धीरे-धीरे विलीन हो गए। हां, इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है कि ये पुराने कबीले जहां-जहां भी बसते गये वहां वहां की शब्दावली को अपनाते गये और अपना शब्द भंडार बढ़ाते रहे। इस पर भी इन्होंने अपनी भाषा के व्याकरण में बहुत कम परिवर्तन किया। इस प्रकार भाषा-वैज्ञानिक गहरे भाषा-विश्लेषण के बाद यहां के आदिवासियों का पता लगाने में सहायक हो सकते हैं।

हिमाचल के पुराने बसे हुये प्रदेशों में लाहुल-स्पिति, कुल्लू और कांगड़ा घाटी की गणना की जा सकती है। इनकी भाषा की समता मुण्डा भाषा-भाषी जनजातियों से पाई गई है तथा

लाहुल-स्पिति के निवासियों के नयन-नक्ष मंगोल लोगों से मिलते जुलते हैं। ईसा-पूर्व एक हजार के लगभग मंगोल लोगों के हिमाचल के दक्षिणी भाग में निवास का संकेत हमें यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में किरात लोगों के वर्णन से मिलता है। ऋग्वेद में हमें शम्बर नामक पर्वतीय राजा का वर्णन मिलता है जिसे बार-बार भरतों के राजा दिवोदास ने पराजित किया था (४), परन्तु शम्बर कौन से पहाड़ी निवासियों का राजा था, यह बताने के लिए हमारे पास अभी कोई प्रमाण नहीं है।

सर्वप्रथम यदि किसी जनजाति का वर्णन मिला है तो वह है खश जाति जिसका संस्कृत साहित्य में विशद वर्णन मिलता है। (५) यह जनजाति मध्य एशिया से यहां आई और आर्य भाषी-भाषी थी, परन्तु भारतीय आर्य भाषा-भाषी नहीं कही जा सकती। (६) ये छठी शताब्दी ईसा-पूर्व में बलख प्रदेश बासियों वाली भाषा बोलते थे। भरत के नाट्यशास्त्र में ऐसा उल्लेख मिला है: "बाहूलीकी भाषा उत्तरवासियों और खशों की देश भाषा है (७)। ग्रियर्सन ने हिमाचल-प्रदेश की भाषा का पश्चिमी पहाड़ी भाषा समूह में रखा है जो कि जौनसर-बाबर, शिमला-पहाड़ी-राज्य, कुल्लू, मण्डी और सुकेत, चम्बा और पश्चिमी काश्मीर में बोली जाती है जबकि लाहुली और स्पिति को तिब्बत–बर्मा-भाषा समूह के अन्तर्गत रखा है (८)। हमें खशों के कोई लेख या साहित्य-सामग्री नहीं मिली जिससे हम यह कह सकें कि वर्तमान पश्चिमी पहाड़ी में उनका कितना योगदान है (९)। ग्रियर्सन के मतानुसार जैसे हम पश्चिम की ओर जाते हैं, विशेषकर पश्चिमी पहाड़ी पर खश प्रभाव अधिकाधिक प्रकट होने लगता है। उच्चारण और शब्दावली में उत्तर पश्चिमी भाषा-समूह उदाहरणतया काश्मीरी भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। (९) खश लोग मूलतः किन्नर लोगों के साथ रहे होंगे, ऐसी सम्भावना है। वराह-संहिता में खश जाति का वर्णन कुनहा या कुनोर लोगों के बाद मिलता है (१०)। कुल्लू के कुनैत भी दो भागों में विभाजित है खसिया और राओस ११ खोशिया शब्द का प्रयोग देशी भाषा में उच्च जाति की अभिव्यक्ति के लिये होता था जो कि खश का ही बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। मनु (१२) ने खशों को बाह्य जाति क्षत्रियों की सन्तान बताया है - कुछ दक्षिण-भारतीय जनजातियों के वर्णन के बाद मनु का कथन है कि कम्बोज, यवन, शक, पारद, पहल्व, चीन, किरात, दरद और खश हैं जिनको धार्मिक कार्यों की अवहेलना करने के कारण बाह्यजाति कहा गया है चाहे वे अनार्य भाषा-भाषी हों अथवा आर्य भाषा-भाषी।

खशों के बाद हम उन प्राचीन कबीलों को लेंगे जिनकी पुष्टि साहित्य या इतिहास के स्रोतों में मिलती है, वे इस प्रकार हैं :—

(२) किम्पुरुष या किन्नर :—

किम्पुरुष का शाब्दिक अर्थ हैं कैसा आदमी। इसका सर्वप्रथम वर्णन ब्राह्मण-ग्रन्थों में मिलता है जिसका तात्पर्य नकलची जीव या लंगूर से है (१३)। सम्भवतः इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग

वाजसनेयि संहिता (१४) में हुआ है। मैक्समूलर इसका तात्पर्य वनवासियों से लेते हैं। पुराणों में किम्पुरुषों की उत्पत्ति ब्रह्मा की छाया से बताई गई है (१५) और उनका निवास कैलाश पर्वत पर बताया गया है (१६)। जबकि किन्नरों की उत्पत्ति अरिष्ट और कश्यप ऋषियों से बताई गई है और उन्हें हिमालय-वासी बताया गया है (१७)।

वायु-पुराण में किन्नरों के सौ नगरों का वर्णन है जो कि कैलाश के पास स्थित हैं तथा वे महानील पर्वत पर भी निवास करते थे (१९)। वर्तमान काल में किन्नर हिमाचल के पूर्व में तिब्बत के समीपवर्ती किन्नौर प्रदेश के निवासी हैं। वे मिश्रित खून के हैं। मूलतः उत्तर-भारत के निवासी होते हुए उन्होंने प्रायः तिब्बत और गुरखा लोगों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये और इस प्रकार से उनमें कई मंगोल नयन-नक्शों वाले बन गये। ये गौर वर्ण के हैं (२०)।

प्रसिद्ध भूगोल-शास्त्री डा०एस० एम० अली(२१) के अनुसार किन्नर के हिमालय निवासी हैं और महादेव वहां किरात वेश में प्रकट हुये थे। पुराणों के आधार पर डा० अली बताते हैं कि स्वायंभुव मनु के प्रपौत्र का नाम किम्पुरुष था जिसको उनके पिता अग्निवर ने जम्बू-द्वीप का नौ भागों में विभाजन करते हुए, हिमकूट का राज्य दिया था (२२)। मत्स्य पुराण के भुवन-कोश प्रभाग में किम्पुरुष-वर्ष का वर्णन भारतवर्ष, हरि-वर्ष और इलावृत-वर्ष के साथ मिलता है। (२३)

किन्नरों का वर्णन

संस्कृत-साहित्य में विशद रूप से मिलता है-रामायण, महाभारत, पुराण तथा परवर्ती साहित्य तथा बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी उनका वर्णन मिलता है (२४) तथा भारत बर्मा और लंका की मूर्तिकला में उनका चित्रण है। उनको कन्दरावासी, गायक, अर्धदेव अभिहित किया गया है एवं देवजातियों में गिना गया है। (२५)

एन० डी० ममगाई के अनुसार किन्नर-देश अथवा किंपुरुष देश मानसर झील एवं कैलाश के पश्चिम में था और उन्होंने डा० बुद्ध प्रकाश के मत जिसके अनुसार किन्नरों का निवास काश्मीर था को अस्वीकार करते हुये उनका मूल निवास-स्थान हिमाचल के आधुनिक किन्नौर में निश्चित किया है (२६)।

किम्पुरुष अथवा किन्नर का शाब्दिक अर्थ "कैसा आदमी" घृणास्पद न हो कर आश्चर्यास्पद भी हो सकता हैं क्योंकि अमरकोश (२७) में इन्हें देवयोनियों जैसे यक्ष, विद्याधर तथा गन्धर्वों के साथ गिना गया है।

३ कलापग्रामक :—

वायु-पुराण में कलापग्राम को कैलाश के पूर्व में हिमालय पर स्थित माना गया

है। जहाँ पर मृकण्ड, वसिष्ठ, भरत, नल, विश्वामित्र, उद्दालक आदि ऋषि सैकड़ों व हजारों घर बनाकर रहते थे (२८)। अलबेरूनी मत्स्य-पुराण के साक्ष्य के आधार पर उन्हें किम्पुरुष और खश लोगों के पड़ोसी बताते हैं (२९)। कलापग्रामक का शाब्दिक अर्थ है बुद्धिमान लोगों का ग्राम जिसकी पुष्टि वायु-पुराण के कथन से होती है।

४ कोहल :—

इनका वर्णन बृहत्संहिता में मिलता है और इनका निवास उत्तरी विभाग में बताया गया है (३०)। इनकी पहचान कोहल या कुल्लू जनजाति से की गई है जिन्होंने कुल्लू जनपद को अपना नाम दिया (३१)।

५ मपहल :—

बृहत्संहिता में इन्हें भी उत्तरी विभाग में रखा गया है। ये संभवतः कोहल अथवा कोल लोगों से मिलते-जुलते लोग थे जिनका नाम कुल्लू घाटी के लाहुल तालुका में आज भी मिलता है (३२)।

६ दण्डपिंगलक :—

डा० शशिभूषण चौधरी बृहत्संहिता में वर्णित दण्डपिंगलकों को भी कुल्लू घाटी की जनजातियों के साथ जोड़ते हैं (३३)।

७ कुलूत :—

इनका वर्णन बृहत्संहिता (३४) में मिलता है तथा महाभारत, पुराणों और राजशेखर की काव्य-मीमांसा में भी ये वर्णित हैं (३५)। विष्णु-धर्मोत्तर महापुराण के अनुसार भरत अयोध्या से कैकय देश को जाते हुये विपासा और इरावती (रावी) नदियों के बीच कुलूताधिपति जय से मिले थे (३६)। विशाखदत्त के नाटक मुद्राराक्षस से हमें कुलूतों के एक राजा चित्रवर्मन का भी पता चलता है (३७)। इनकी मुद्राओं से इनके एक और राजा का भी ज्ञान होता है, (३८) इन मुद्राओं की समय-सीमा प्रथम द्वितीय शताब्दी ईसा बाद रखी गई है। (३८) मैगस्थनीज ने भी कोलूबी नामक जाति का वर्णन किया है जिसकी पहचान कुलूत से की गई है (३९)। डा० शशिभूषण चौधरी मुद्रा-साक्ष्य तथा ह्वेन-सांग के आधार पर कुलूतों का आधिपत्य कांगड़ा जिले की कुल्लू घाटी तथा सुकेत और मण्डी के छोटे राज्यों पर भी बताते हैं (४०)।

८ माण्डव्य:—

बृहत्संहिता (४१) में इनका दो बार वर्णन मिलता है। एक स्थान पर अलग माण्डव्य -एक ऋषि का नाम भी इस संहिता में उपलब्ध है (४२)। इन ऋषि का नाम शतपथ-

ब्राह्मण, शांखायन आरण्यक और सूत्रों में भी मिलता है (४३)। सम्भवतः माण्डव्य जनजाति का प्रयोग मण्डी के निवासियों के लिए हुआ है। पाणिनि के यवादिगण में वर्णित मण्डमती (४४) सम्भवतः मण्डी ही है।

९ कुणिन्द या कुलिन्द :—

इन्हें बृहत्संहिता में "कौणिद" कहा गया है (४५)। यह जनजाति कुल्लू के निवासियों से अलग है। पुराणों और महाभारत में भी इनका वर्णन मिलता है। महाभारत के वर्णन से स्पष्ट परिलक्षित है कि ये कई प्रदेशों में फैले हुए थे या इनके निवास स्थान विस्तृत प्रदेश में थे जिसकी साक्षी प्राप्त मुद्राओं से भी मिलती है। इनकी मुद्राओं से ज्ञात होता है कि ये राजतन्त्र के अनुयायी थे। बाद में ये कुषाणों के आधिपत्य में आ गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्य से ये यौधेयों के साथ मिल गये और गुप्तों के उदय से पूर्व यौधेयों के जन-समूह का एक भाग बन चुके थे (४६)।

१० त्रिगर्त :—

बृहत्संहिता (४७) में इन्हें भी उत्तरी विभाग में रखा गया है। पुराणों, महाभारत तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी इनका वर्णन मिलता है। मुद्राओं तथा बाद के शिलालेखों में भी इनका वर्णन मिलता है (४८)।

त्रिगर्त का शाब्दिक अर्थ है ऐसा प्रदेश जो तीन नदियों रावी, व्यास तथा सतलुज से सींचा जाता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता चलता है कि यह छः जनजातियों का समूह था जिन्हें कालिका में इस प्रकार गिनाया गया है - कौण्डोप्रस्थ, दण्डकी, क्रोष्टकी जाल्मानी, ब्रह्मगुप्त और जानकी।(४९) इनमें ब्रह्मगुप्त की पहचान भरमौर से की गई है तथा कौण्डीप्रस्थ की पहचान त्रिगर्त के भाग वीरग्राम अथवा वैजनाथ से की गई है जहां कन्दुका-बिन्दुका नाम की नदी बहती है। शेष चार नामों की पहचान के बारे में कहना कठिन है। हेमचन्द्र, राजतरंगिणी, ह्वेनसांग तथा शिलालेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि जालन्धर, आधुनिक होशियारपुर तथा कांगड़ा के पहाड़ी प्रदेश त्रिगर्त के अन्तर्गत थे।

११ उदुम्बर या औदुम्बर :—

सम्भवतः उदुम्बर वृक्षों की अधिकता के कारण इस प्रदेश के वासियों का नाम उदुम्बर पड़ा। यद्यपि ऋग्वेद में इस वृक्ष का वर्णन नहीं है तथापि अथर्ववेद तथा परवर्ती साहित्य में इसकी लकड़ी का प्रयोग याज्ञिक कार्यों में बहुधा चर्चित है (५०। एतरेय ब्राह्मण में इसके फल की तुलना मधु से की गई है (५१)।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से उदुम्बरों की मुद्राएं आधुनिक कांगड़ा, गुरदासपुर, होशियारपुर में काफी मात्रा में प्राप्त हुई हैं। जिससे यह कहा जा सकता है कि व्यास की घाटी या उससे भी विस्तृत ऊपरी सतलुज तथा रावी के बीच का भाग ही प्राचीन उदुम्बर

देश था (५२)। इनकी मुद्राएं कई प्रकार की थी इनसे हमें चार राजाओं -शिवदास, रूद्रदास महादेव और धनघोष का पता चलता है। महादेव शब्द का प्रयोग राजा की उपाधि के अर्थ में भी इनकी मुद्राओं में मिलता है।

अभी हिमाचल के प्राचीन कबीलों पर और अधिक खोज की आवश्यकता है। सुविधा की दृष्टि से इनका विभाजन इन चार श्रेणियों में कर सकते हैं।

१ प्रागैतिहासिक कबीले अथवा अर्ध-ऐतिहासिक कबीले जैसे खश और किन्नर।

२ महाकाव्यों और पुराणों में वर्णित कबीले।

३ ऐतिहासिक कबीले-पूर्व युग।

४ ऐतिहासिक कबीले-उत्तरवर्ती युग।

संख्या दो वा तीन में हम कुलिन्द, कुलूत, त्रिगर्त अथवा उदुम्बर आदि को रख सकते हैं तथा संख्या चार में गुज्जर और राजपूतों को रख सकते हैं।

o — •

संकेत-सूचि

१ रोमीला थापर, **ए हिस्ट्री आफ इण्डिया**, प्रथम भाग, पेंलिकन सीरीज, १६७२ पृष्ठ ५०-५१।

२ स्टीफन फुक्स, **दी एब-अरीजनल ट्राइबस आफ इण्डिया**, मेकमिलन दिल्ली, १६७३ पृ० ६६-६७.

३ टी० एस० नेगी, **शेडयूल्ड ट्राइबस आफ हिमाचल प्रदेश**, शिमला, १६७६, पृष्ठ ११-१४४.

४ मेक्डानल और कीथ, **वैदिक इण्डेक्स** प्रथम भाग, दिल्ली, १६५८ पृ० ३६३.

५ सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, **लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया**, भाग ६, पार्ट ४ कलकत्ता १६१६ पृ० २–८.

६ वही, पृ० १४

७ नाट्यशास्त्र, १७, ५२

८ ग्रियर्सन, **वही**, पृ० १, ७, ६६६ नं ८ पार्ट १, पृ० ६६ और ८३

६ ग्रियर्सन, **वही**, नं० ६ पार्ट ४, पृ० ३७४

१० इ० टी० एटकिनसन, **दी हिमालयन गजैटियर** नं० २, पार्ट १, पुनर्मुद्रित, दिल्ली १६७३, पृ० ३७६

११ वही पृ० ३७६

१२ अध्याय दश, २२, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ किन्नौर, १९७१ पृ० ५०

१३ एतरेय ब्राह्मण ii, ८, शतपथ ब्राह्मण, १, ३, ३, ६, VII ५,२,३२
मैक्डानल और कीथ, **वैदिक इण्डेक्स** प्रथम भाग पृ० १५७

१४ १६, **तैत्तिरीय ब्राह्मण**, iii, ४, १२, ।

१५ भागवत, III २, ४३

१६ वही, IV ६, ३१

१७ एम० आर० सिंह :- **ज्याग्राफिकल डाटा इन दी अर्ली पुराणाज**, कलकत्ता, १९७२
पृ० २८

१८ ४६, ४१

१९ दीक्षितार, **पुराण इण्डैक्स** १, पृ० ३७७

२० स्टीफन फुक्स, **वही** पृ० ९५

२१ एस० एम० अली, **दी ज्याग्रफी आफ दी पुराणाज**, दिल्ली, १९७३, पृ० ५८

२२ वही पृष्ठ ९-१०

२३ वही पृ० ७

२४ टी० एस० नेगी, वही पृ० १३-१६, **डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ किन्नौर**, पृ० ४५-५०,
वंशी राम शर्मा, **किन्नर लोक-साहित्य**, पृ० ६-१६

२५ टी० एस० नेगी वही पृ० १४

२६ **डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आफ किन्नौर**, पृ० ४९

२७ **अमर कोश** १,१,११

२८ एम० आर० सिंह, वही पृ० २९

२९ प्रथम भाग' अंग्रेजी अनुवाद, पृ० २६१-६२

३० **बृहत्संहिता** XIV, २४-२८

३१ एस० बी० चौधरी, **एथनिक सेटिलमेंटस इन एन्शेंट इण्डिया**, कलकत्ता १९५५ पृ०
११८

३२ **वही**

३३ **वही** पृ० ११९

३४ **बृहत्संहिता** XIV, २२-२३, २९-३०

३५ एम० आर० सिंह, **वही** पृ० १८६

३६ वही

३७ वही

३८ एस० बी० चौधरी, वही पृ० ११९: नोट ४

३९ एम० आर० सिंह, वही पृ० १८६

४० एस० बी० चौधरी, वही पृ० ११९

४१ **बृहत्संहिता** XIV २२-२३, २४-२८

४२ **वही** अध्याय १०४, श्लोक ३

४३ मैक्डानल और कीथ, **वैदिक इण्डेक्स** भाग २, पृ० १४८

४४ **अष्टाध्यायी,** VIII, २,९

४५ **बृहत्संहिता** XIV, २९-३१

४६ मजुमदार और अल्तेकर, **दी वाकाटक-गुप्त एज दिल्ली,** १९६७, पृ० १-२, ३२

४७ **बृहत्संहिता,** १४, २४-२८

४८ एम० आर० सिंह, **वही** पृ० ३६८-६९

४९ **वही** पृ० ३६८

५० मैक्डानल और कीथ, **वही** प्रथम भाग, पृ० ८७

५१ **वही**

५२ एस० बी० चौधरी, **वही** पृ० ५७ ●

अध्यक्ष
इतिहास विभाग, हैदराबाद
केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-I

काव्यकानन में धौलाधार

—डॉ० मनोहर लाल

आज इस महानगरी दिल्ली में बादल फट पड़ा है। धरा नहा ली है। आसमान से दुर्जन-सा पतित नीर मटमैला होकर नीरस हो लिया है। उसने अपनी सिगरी पावन ा को त्याग कर, मलिनता से समझौता कर लिया है। जगह २ पानी खड़ा हो गया है, जमा हो गया है, लग रहा है साल भर का मैला धरा का खंदोलू धुल रहा है। इ ना मैला! इतनी मैल!! छिः छिः।

यह शहर है, नगर है। यहां नागर रहते हैं। मैं भी नागर हो गया हूं, पर इस रिमझिम ने मेरे मानस में 'माटी मेरे गांव की' के छाया-चित्र बनाने-बिगाड़ने शुरू कर दिये हैं। मैं धौलाधार के सुदूर ामने वाली गिरि-शृंखला के उतुंग शिखर पर बसे अपने गांव के उस छोटे-से कुटीर में पहुंच गया हूं जिसकी आंगन-वाड़ी में किम्ब और अमृत फल (अमरूद) की डालियां डोल रही हैं। और आंगन से सटे खेत में हरितवसना मकई की पौध पत्र-सरीखी बाहें झुकाए ऊपर और ऊपर उठ कर फूलने-फलने की मौन मधि पुकार कर रही है। इसके आगे खुआड़ा (खलिहाण) है, मेरे बचपन का क्रीड़ागंन। जाने कितनी किलकारियां और सिसकियां मौन पड़ी हैं यहां मेरी और मेरे बाल-सखाओं की। यह रही सामने दायें-बायें और ऊपर की स्वच्छन्द भाव से फैली—धौलाधार जो मेरे लिए प्रतिदिन बड़े तड़के ही प्रिय दर्शिनी हो लेती थी। मैं तब भी इसे देखता था-'भोर ते सांझ लौं' अब भी देखता हूं। पर अब 'सांझ ते भोर लौं' भी देखने को मन करता है।

इसी धौलाधार को हिमाची कवि पीयूष ने सुघड़ प्रियदर्शी 'लाड़ी' के रूप में देख डाला। भागसू के प्यार से सिंचित, ललाट पर भगवान भास्कर की बिंदिया से वर्णमाला की 'अनुस्वार' हुई, बादलों के चिलमन से कनखियों देखती बांकी नार कहीं कटाक्ष कर बैठे, जरा बचना!

'बद्दले दा झुण्ड कडडी, धारोधार पल्ला छड्डी,
खड़ी धौलाधार लग्गै, जियां बांकी नार ऐ।
बरफा दे गैहणे पाई, सूरजे दी बिन्दी लाई,
सारेयां दे मनैं भाई, भागसू दा प्यार से॥'

कहते हैं जहां अच्छे लोग न हों, उस गांव को छोड़ देता चाहिए। और उस बेदर्दी ने गांव छोड़ दिया। इस वजह से नहीं, शायद पेट के लिए-चल दिया परदेस। और उसकी वह प्रवत्स्य-पति का-मुदियार- पठोरक देखती रही, झूरती रही, अंजुआं हार पिरोती रही। जो अब तक फूट

रही थी, फट पड़ी। बांकी नार के लिए धौलाधार फिर आलम्बन बन गई और उसका लोक कवि समझाने लगा—

जाई लैणा मोया, भागसूये दिआ छौणी,
ठण्डा नीर बगदा।

उच्चियां पहाड़ा ते बांकियां नारां
मोया तेती तेरा दिल लगणा।

पर वह नादान शायद उसके दर्द-दिल को अब भी समझ नहीं पाया। 'कांगड़े दा टिल्ला' उसके सामने स्थिर हो गया। 'माटी मेरे गांव की' याद आते ही मेरे सामने भी टिल्ला आ खड़ा हो जाता है। सारा प्यार लुटा देता है। धौलाधार मेरे आंगन से जैसी दिखाई देती है, वैसी ही लोकगीत की कड़ी बन गई—

कांगड़े दा टिल्ला वे अड़या, कांगड़े दा टिल्ला।
उच्चियां धारां चुमदियां अम्बर, उच्चे खड़े दयार।
उच्चे खड़े दयार वे अड़या, उच्चा एह संसार।
बर्फां दी टोपी ओड खड़ोती, उच्ची धौलाधार।
उच्ची धौलाधार खड़ोती, दिंदी सबनूं प्यार।

और जरा देखिए लम्बी चौड़ी धौलाधार कितने २ परिवारों को अपने वक्ष से पालपोस रही है, गोद में खिला रही है। मां का प्यार, मां का दुलार, लोरी ! और वह भी भोरी-भोरी।

ललित चन्द्र शास्त्री 'रैणा' ने गीत लिखा तो डुंगर स्तुति में धौलाधार के सारे परिवेश के शब्द चित्र प्रस्तुत कर दिए। लगता है—यह गीत, उसके शब्द, उसकी कड़ियां, उसकी तर्ज, सबका सब मेरा है, आपका है, हम सबका है।

क्या कुछ नहीं है यहां पहाड़ हैं बांके-बांके। शस्य श्यामला धरा पर धान के खेत हैं, बादल हैं, कुआलू हैं, टियालू हैं, ढोलरू हैं, टमक हैं, ढोल हैं। खड्डें हैं, कुल्हें हैं, नाले हैं, पाले हैं, ये धौलाधार और धौलाधार वाले सब कुछ संभाले हैं :-

धौले-धौले पहाड़ हमारे सर सर बणां दी पौण।
झिलमिल चिलके चांदणीयां बिच, जिहयां चांदिये भौण।

उच्चियां उच्चियां बांकियां धारां, हरे भरे धानां दे खेत।
हिलमिल खेलदे बद्दलां नें, जिहयां बच्चे माऊं दे पेट॥

डुग्घी २ नदियां उच्चे कुआलू, टिआलुआं पर अम्रत नीर।
ढोलरू गांदे, टमकां बजांदे, भगतां करांदे झीर।

सौणे च रिमझिम बद्दल बरदे, भरदे केई नाले ढेर।
कुल्हां कनारे भाई म्हारे, गांबे झंझोटी टेर ॥

इस धौलाधार ने पहाड़ी के कवियों या लोक कवियों को ही अपने प्यार की डोर में बांधा हो, ऐसा नहीं है। गुलेर के प्राचीन कवि 'उत्तम' ने अपने 'दिलीप-रंजनी' ग्रंथ में 'अथ राज त्रिगर्त को प्रमान' शीर्षक के अन्तर्गत धौलाधार को याद किया है और खूब याद किया है –

'पछिम दिशानि कवि' 'उत्तम' ऐरावती हैं,
दक्षिण दिशानि शोन सागर समान हैं।

पूरव समुद्र सो शतद्रू हैं मैडो पर,
परम पुनीत सुरधुनी की सथान हैं॥

उत्तार तरफ धौलागिरि लौं अमल हद,
मध्य देश बान गंगा सुख को निधान हैं।

कांगरो नगर पीठ जालन्धर पुन्यभूमि,
एतिक त्रिगर्त देश राज को प्रमान हैं॥

पर मैं इस सीमा में बंद नहीं होना चाहता। मेरे सामने कांगड़ा की सुहागिन धौलाधार है। उसका धवलहास है। उसकी सुन्दरता शान्त-कांत है, अभिराम है, अविराम है। यह स्वच्छता और सौम्यता सिखाती है। 'कूल्यां' की कल २ छल २ और पालमपुर घाटी के जंगल में मंगल देखते ही बनता है, भुलाए भूलता कहां हैं।

सुसंस्कृत कवि संतराम वत्स्य ने धौलाधार के ऋतुचक्र को देखा है, समझा है और फिर ध्यान की गंभीरता में उतर कर व्यक्त किया है। महातपा सूर्य से प्रेरित हो, पुष्करावर्त मेघ-चमू सप्तसागरों से जलराशि ढो-ढोकर 'धवलाधार' का अभिषेक करती है, धारा-सार बरस कर दिन-रात और रात दिन। रह-रह कर, सह-सह कर। और तब चौमासे भर की सद्य-स्नाता 'धौलाधार' हिमानी कवि पीयूष की बांकी कल्पना के पंख मरोड़, 'अगरू धूम की श्याम लहरियां, उलझी हों इन अलकों से' (प्रसाद) ऐसी धारणा धार लेती है—

चौमासे में धवलाधार
स्नानव्रतचारिणी, एक चीरधारिणी
निरशना, निरवसना-सी
तितिक्षा की साधना करती है।
गंधर्व इन्द्रब्रजा छन्द में स्वच्छन्द गाते हैं
नगाड़ा बजाते हैं।
किन्नरियां विद्युत-दीप से आरती उतारती हैं

गुग्गल और अगरु से धूपती हैं
और गाती हैं मंगल गीत
यह है 'ऋत' की रीत

(सन्तराम बत्स्य)

यही घौलाधार अथवा उसका आंचलिक परिवेश शरद की जाड़े भरी ठिठुरन में बर्फ का धवल चीर ओढ़ लेता है। तब जहां कवि 'सारस्वत' को लगता है —

'किसी दुर्दिन में
रूई के फाहों सी
लगातार गिरती बर्फ
यूं लगती है
जैसे
अनंत खरगोश-शावकों को
मार-मार कर
अविरल गिराता जा रहा हो
कोई आकाश में बैठा हुआ
पंच तन्त्र का सिंह।'

अथवा

बड़े वर के सफेद लट्ठे के थान-सी
अछोर फैली यह उजली बर्फ
उड़ती हुई यूं लग रही है
जैसे किसी थान को
बीच-बीच से काट-काट कर
बेच रहा हो कोई
ना समझ बजाज।

('एक टुकड़ा धूप' से)

वहीं पर पं० सन्त राम वत्स्य की कल्पना का लोक तत्व और भी लुभावना है, उसमें ध्वंस नहीं, निर्माण की सौंधी-सौंधी गंध है। पंडित जी की कलम पर शिव का मानसपुत्र, पशुपति सरीखा गद्दी प्रतीक बनकर आ बैठा है। उसका विश्वास सृजन में है। उसके ध्वंस में भी सृजन है, निर्माण की जड़ को वह काटता कहां है, काटता है इसलिए कि निर्माण ही और 'लोकमंगल' छितरा जाए यत्र-तत्र सर्वत्र। संत जी संत भाव से लिखते हैं—

'पशुपति गड़रिया भेड़ों की ऊन उतारता है

ग्रौर धुनिया उसे धुन धुन कर
धौलाधार की ग्रोर पसारता है
कर्पूरगौर उस ऊन से
ढक-ढक जाती है
छिप-छिप जाती है
धवलधार इस ऊन की पूनियां बनाती है
सहेजकर, संभालकर एक के ऊपर एक
रखती जाती है
बस यों ही शरद बीत जाती है।'

पर शरद के बीत जाने पर, ग्रीष्म के ग्रा जाने पर, वर्षा से जी भर कर नहा लेने के बाद भी धौलाधार की हिम-निधि क्षरित कब होती है! उसका बांकानूर **'क्षणे-क्षणे यन्नवताम्मुपैतितदेव रूपं रमणीयताया'** को कब 'प्रतीप' बनाता है। शायद वह रूप मन की व्यथा को मारता है चित में 'प्रसाद, को पसारता है, इसलिए 'गौतम व्यथित' का कवि सहज ही वृद्ध हो लिया ग्रौर ग्राशीर्वाद के लिए धौलाधार से भी ऊंचा हाथ उठा बुदबुदा उठा—

'जुग-जुग जिग्रां धौलिये धारे,
दिखी दिखी तिजो भुल्ली दुःख सारे

'व्यथित' किग्रा विसरे ऐडड़ी तौली
इत मेरी बालड़ी बरेस।'

पर प्रकृति के चित्रों में रंग वैविध्य है। कौन चतुर चितेरा इसे ग्रपनी तूलिका की नोक से ज्यों का त्यों कैद कर सकता है। धौलाधार ने ग्रपनों को ही मोहा हो, ऐसा नहीं है। उसकी गोद में जो भी जा विराजा, उसने उसे ही वत्सल भाव से दुलारा-पुचकारा। सन् १९६० में उपेन्द्रनाथ ग्रश्क की 'सड़कों पे ढले साये' कविता पुस्तक छपी थी ग्रौर तब नयी कविता के प्रकृतिकाव्य में 'धौलाधार' ग्रा विराजी थी। उन्होंने 'खिलादिन' कविता में 'धौलाधार की बर्फ ही नहीं – हिम शिखरों, खड्डों-नालों तथा घराटों के प्रकृति-संगीत को भी सुना था। लता-पादप ग्रौर वह भी धौलाधार के, बनने की कामना करने वाला कवि, ग्रपनी माटी को वहां की माटी करके जीवन के नये ग्रध्याय को खोलना चाहता है। पर कैसे? ऐसे—

'बहुत दिनों के बाद खिला दिन—
जमी बर्फ शिखरों पर गिरिवर धवलधार के।

मेरे मन का जमा हुग्रा हिम लेकिन पिघला
जी होता है, गाऊं जी भर गीत प्यार के।
शिखरों पर घूमूं ग्रावारा!

खड्डों पर उतरूं !
नद नदियां नाले लांघू !
ठीकरियां फेंकू सरके निथरे पानी पर।
पनचक्की का गीत सुनूं, छिदरी छाया में पेड़ों की।
टुक बैठ सीटियां भरूं हवा-सी,
मुक्त हुए मन को छोड़ूं उन्मुक्तधरा पर !
फूलों का रस लूं, रस दूं,
बन मिट्टी जीवन नया जगा दूं।'

यह निर्माण के कवि की बात है, उसे धौलाधार स्थिर अटल नहीं लगती। वह कहती है, बोलती है, संदेश देती है। धौलाधार की इतिवृत्तात्मकता के लोकतत्व को कवि ने समझा है, वहां जीवन, वहां का वातावरण उसे अपने प्रभाव में, अपने मोह पाश में बांध सका है।

बृजेश अनमोल ने जब-**'बांकी धौलाधार, कनै देवदार हस्सदे। बंसरियांरीया तांना पर मोर गुआलू नचदे'** लिखकर धौलाधार को याद किया तो हरि प्रसाद सुमन ने **'चांदी रे पहाड़ा वाला देश हमारा'** कह कर पुकारा तो नरेन्द्र अरुण की कल्पना भी यथार्थ के आगे न पसर सकी भला संत की 'संतता' और 'अडक की-सी कसक इस बात में भी कहाँ। उनके शब्दों में जो बोलती तस्वीर है, वह हिमानी-पहाड़ी कवियों की मंथरता को जगाती हैं। कवि अरुण भी हिमानी छाया में अलसा गए—

'चांदी रे पहाड़ा बिच, हियुंएं रीया धारा बिच्च।
तोस चील्ह दयारा बिच्च, ठण्डे डूंघे नालां बिच्च।
असी लोक वसन्दे, फुल्ला साही हस्सन्दे।'

पर इतना सब लिखने के बाद मेरा मन फिर 'माटी मेरे गांव की' से जुड़ा जा रहा है। धौलाधार को मोर ते सांझ लौ 'और' सांझ ते मोर लौ' निहारता हूं यहां बैठा कल्पना के चश्मे से बचपन में जिस आंख से देखता था, वह आंख नहीं थी। जब आंख हुई तो प्रवास मिल गया **'अग्नि कै बीच पहार पड़े'**। पर—'लोचनैर्वञ्चितोऽसि' के कष्ट को झेलता हुआ भी कवि, प्रत्यूष' के शब्द-चित्र को देखकर संतोष कर लेता हूं, इस छैले हिमानी कवि को सब कुछ छैल छैल ही दिखाई देता है-शैल और फिर सैलदर सैल। आंख है अपनी-अपनी, नजर है अपनी-अपनी, दृष्टिकोण है अपना-अपना —

छैल शहर भागसू ऐ छैल प्हाड़ियां
कुनीं भलां रूपे दिहयां मिजरां खलारियां।

मिल्ली एत्थू सज्जणा जो दिल ऐ गुआचदा
चित मोही लैन, हरी कंजकां कुआरियां॥

सूहे लाल कपड़ेयां च संझ ऐ तुग्रारदी।
घड़ी दो घड़ियां ही होंदयां दुहारिया।
रात ग्राई फेरदी ऐ, कालखा दी कूचियां
जमीन ग्रसमान सज्जै तारियां क्यारियां ॥ — प्रत्यूष

मन तो करता है कि प्रत्यूष के नजरिये में दखल देकर 'चित मोही लैन हरी कंजकां बुग्रारिग्रां को 'चितारागे-द्धे षे उप्पर ग्रधीं, फिरन बुग्रारिग्रां' करके पर्वत की गोद में प्रकृति के संगीत को सुनूं ग्रौर वहां मिलने वाली ग्रमोल मानसिक शान्ति की ग्रोर पाठकों का ध्यान ले जाऊं पर मैं कौन होता हूं कवि की नजर में खलक डालने वाला, उसे मलाल पहुंचाने वाला। पर भाई :— 'परिचय प्रेम का प्रवर्तक है।'

यह है काव्यकानन में धौलाधार की छवि। ग्रौर भी होंगी, शब्द चित्र भी होंगे। उनका भी ग्रपना मूल्य होगा, उनका भी कोई मूल्यांकन करेगा, मैं यहीं, इन्हीं शब्दों के साथ ग्रपने को समेट रहा हूं ग्रौर धौलाधार की शीतल छाया में बनते-बिगड़ते मेघ-चित्रों को देख रहा हूं। छवि क्षण-प्रतिक्षण बदल रही है। उसे कैसे सभालूं इस मन में, इस नयन में। पात्र ग्रोछा, दान-राशि मत्ती है। बस यही कहूं मेरा नयन ही नहीं, हृदय भी प्रसन्न हो गया है। धौलाधार ! जीवनाधार !! तुझे बार-बार नमस्कार !!!

१/१०८५३, गली नं० ४
सुभाष पार्क, शाहदरा
दिल्ली-३२

कांगड़ी बोली में आक्षरिक संरचना : भाषा वैज्ञानिक अध्ययन

— मधु बाला

भाषा का विश्लेषण उच्चारण पर निर्भर करता है। विभिन्न भाषाओं में शब्दों, अक्षरों एवं वर्णों के उच्चारण में विभिन्नता पाई जाती है, जिस की सहायता से एक भाषा से दूसरी भाषा के सम्बन्धों एवं असमानताओं का पता चलता है। इस खोज पत्र में भाषा विज्ञान की दृष्टि से कांगड़ी बोली की आक्षरिक संरचना पर विचार किया गया है।

अक्षर की व्युत्पत्ति :

अक्षर की व्युत्पति के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न विचार हैं। पुरातन काल में वाक्य को अखण्ड्य समझा जाता था, और वाक्य को ही अक्षर का रूप मानते थे। लेकिन जैसे-२ अध्ययन में उन्नित होने लगी तो यह ज्ञात हुआ कि वाक्य खण्ड्य है, इसको विभिन्न शब्दों में विभाजित किया जा सकता है। इस धारणा को लेकर फिर शब्द को अखण्ड्य माना गया लेकिन और गहराई में अध्ययन से मालूम हुआ कि शब्द को अक्षरों में विभाजित किया जा सकता है। अक्षरों को विभाजित करने से स्वर एवं व्यञ्जन का पता लगाया जा सकता है। स्वर एवं व्यञ्जन शब्द और वाक्य की सब से छोटी ईकाई है जो अविभाज्य है। कुछ स्वर तो शब्द के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं, लेकिन स्वर के अनुरूप व्यञ्जन शब्द के रूप में प्रयोग नहीं हो सकते, स्वर के संयोग से ही शब्द निर्माण में सहायक हो सकते हैं। और एक आक्षरिक संरचना में केवल एक स्वर होता है व्यञ्जन एक से अधिक होते हैं, इसी प्रकार द्वि आक्षरिक सरंचना में दो स्वर और व्यञ्जन दो से अधिक होते हैं बहुआक्षरिक सरंलना में स्वर और व्यञ्जन अनगिनत रूप में प्रयोग लाये जा सकते हैं (जितने बोली के प्रयोग में सम्भव हो सकें)।

अक्षर की परिभाषा :

इस विषय में विभिन्न भाषा विज्ञानियों के विभिन्न विचार हैं, जिस पर विचार करना आवश्यक है। कुछ भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार मुखरता के शीर्ष को अक्षर कहा जाता है जो गह्वर से सम्बन्धित हो भी सकती है और नहीं भी।

'के० एल० पाईथ द्वारा' : आक्षरिक वह ईकाई है जिस का उच्चारण फेफड़ों में से आने वाली वायु के एक स्पंद द्वारा होता है, एक स्पंद में केवल एक ही अक्षर का उच्चारण होता है

जैसे (चोर) में केवल एक ही वायु स्पंद का प्रयोग होता है। आक्षरिक विभाजन ध्वनि संख्याओं पर निर्भर नहीं करता अपितु इस बात पर निर्भर करता है कि कितने झटकों से एक शब्द का उच्चारण होता है यदि शब्द का उच्चारण दो झटकों में होता है तो दो आक्षरिक ईकाईयां हैं।

अक्षर की उत्तम परिभाषा वह है जिसमें शब्द उच्चारण में जितने प्रमुख और मुखर स्वर हों उसी के फलस्वरूप उतने ही अक्षर एक शब्द में माने जायें जैसे (मतां) 'अधिक' इस शब्द में दो अक्षर हैं। पहले अक्षर का विभाजन 'अ' स्वर के बाद होता है क्योंकि 'अ' प्रमुख है और दूसरे अक्षर में 'आ' प्रमुख है।

आक्षरिक सीमा निर्धारण :

अक्षर की परिभाषा के समरूप अक्षर की सीमा निर्धारण में बहुत कठिनाई प्रतीत होती है। स्वर एवं व्यन्जन के संयोग से आक्षरिक संरचना का निर्धारण होता है। एक स्वर अपने आप में शब्द है, और अक्षर भी परन्तु व्यन्जन आक्षरिक रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता जब तक स्वर के संयोग से अक्षर का रूप धारण न करे। ध्वनि विज्ञान द्वारा आक्षरिक सीमा निर्धारण में कई कठिनाईयां पेश आती हैं, यह कठिनाईयां श्रुति यन्त्र के प्रयोग से पूरा ही हल हो सकती है, जब किसी भी शब्द का उच्चारण किया जाता है तो उसमें प्रयुक्त होने वाले स्वरों का कुछ भाग पूर्वाङ्ग व्यन्जन से जुड़ा हुआ होता है और कुछ भाग परांग व्यन्जन से। आक्षरिक सीमा निर्धारण में यह कठिनाई होती है कि अक्षर का कितना भाग पूर्वाङ्ग व्यन्जन से जुड़ा हुआ है और कितना परांग व्यन्जन से। उदाहरणतय : (आल्ना) 'घौसला' इस शब्द में 'ल्' व्यन्जन का कुछ अंश दूसरे अक्षर के पहले व्यन्जन 'न' से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। इसी प्रकार जब दो मुखर एक साथ अक्षर के रूप में प्रयोग होते हैं तो उनकी सीमा निर्धारण में कठिनाई नहीं होती लेकिन जब मुखर के साथ गह्वर अक्षर के रूप में प्रकट होते हैं तो हमें यह देखना पड़ता है कि कौन सा गह्वर परांग से और कौन सा पूर्वाङ्ग से जुड़ा हुआ है, जैसे (चमकदा) 'चमकना' हमें यह देखना पड़ता है कि गह्वर 'मकद' में से कितना भाग 'आ' स्वर से जुड़ा हुआ है। ऐसी कठिनाई हमें दोहरे व्यन्जन में दिखाई नहीं देती जैसे (लम्मा) 'लम्बा' इस शब्द में दो अक्षर हैं; पहली आक्षरिक सीमा 'म' व्यन्जन के बाद प्रतीत होती है, इसी प्रकार आक्षरिक सीमा निर्धारण में यह देखना पड़ता है कौन सी अनाक्षरिक ध्वनियां कौन सी आक्षरिक ध्वनियों से जुड़ी है। सीमा निर्धारण में 'संगम' (Juncture) भी कुछ हद तक सहायता करता है जैसे उदाहरण द्वारा स्पष्ट है :

दिक्खआ	दिक्ख+आ 'देख आ'
राजजा	राज+जा 'राज जा'

इसे आक्षरिक संगम कहते हैं। इस प्रकार अक्षर सीमा, शब्द तो निर्धारित कर सकता है परन्तु शब्द सीमा अक्षर सीमा निर्धारित नहीं कर सकता।

आक्षरिक स्वरूप :

कांगड़ी बोली में विभिन्न आक्षरिक स्वरूप पाये जाते हैं, जिन से हमें यह पता चलता

है कि एक अक्षर में कितने व्यन्जन प्रयुक्त होते हैं और वह मुखर से किस रूप में जुड़े हुये होते हैं। काँगड़ा बोली में दस प्रमुख स्वर है और एक आक्षरिक संरचना में इन स्वरों की स्थिति तीन सुरों के अधीन निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट है :—

१. स्वर
२. स्वर+व्यन्जन
३. व्यन्जन+स्वर
४. स्वर+व्यन्जन+व्यन्जन
५. व्यन्जन+व्यन्जन+स्वर
६. व्यन्जन+स्वर+व्यन्जन+व्यन्जन
७. व्यन्जन+व्यन्जन+स्वर+व्यन्जन
८. व्यन्जन+व्यन्जन+स्वर+व्यन्जन+व्यन्जन

स्वर : एक आक्षरिक शब्द :

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
ऐह 'यह,	ई 'ऐसा ही'	
ओह 'वो'	ए 'है'	
	आं 'हां'	
	ऊँ 'नहीं'	
	अ हैरान होना'	

इस तरह के स्वर जो केवल एक आक्षरिक के रूप में प्रयोग होते हैं, निम्न सुर के अधीन प्रयोग में नहीं लाये जाते और न ही ह्रस्व स्वर एक अक्षर की बनावट में प्रयोग होते हैं।

स्वर+व्यन्जन : एक आक्षरिक शब्द :

इस आक्षरिक शब्द के उदाहरण निम्नलिखित हैं।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	उग 'उगना'	हुव 'अब'
	उस 'वो'	होर 'और ज्यादा'
	अंग 'हिस्सा'	
	ऊंट 'ऊंठ'	
	अज 'आज'	
	इक 'एक'	
	आस 'आशा'	
	ऐस 'मनोरंजन'	

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	आन 'शान'	
	ईस 'नाम'	
	ओंस 'ओंस'	
	ऐल 'एक पौधा'	
	आन 'पहुंचना	
	आल 'तलाब'	

इन स्वर व्यञ्जन आक्षरिक शब्दों में 'अ' और 'उ' अक्सर प्रयोग में आते है परन्तु ई, ऐ, ए, ओ का अधिक प्रयोग नहीं होता। इस प्रकार के आक्षरिक शब्द उच्च सुर के अधीन प्रयोग में नहीं लाये जाते। निम्न सुर के अधीन प्रयोग होने वाले आक्षरिक शब्द भी बहुत कम संख्या में हैं। स्वरों का मेल स्पर्श व्यञ्जनों से नहीं है जैसे फ, थ, छ, च, प, ब आदि।

व्यञ्जन+स्वर : एक आक्षरिक शब्द

ऐसे एक आक्षरिक शब्दों के निम्नलिखित उदाहरण हैं जिसमें स्वर कम्पनयुक्त और स्फोटित व्यञ्जनों के साथ प्रयोग नहीं होते।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
बीह 'बीस'	वी 'भी'	घेह 'डर'
छाह 'लस्सी'	जा 'जाना'	नोह 'नहाना'
मुंह 'मुंह'	दे 'देना'	पाह 'कीमत'
रेह 'रहना'	जो 'को'	
बांह 'बाजू'	से 'शेव'	
मोह 'प्यार'	गा 'गाना'	
नूह 'लड़के की पत्नी'	लो 'रोशनी'	
चाह 'चाय'	मां 'माता'	
साह 'सांस'	जे 'यदि'	
सूह 'खोज'	नीं 'नहीं'	
बैह 'बैठना'	ना 'नाम'	
सह 'वह'	कैं 'क्यों'	
पोह 'महीना'	सों 'सोना'	
	तू 'तुम'	
	मैं 'मैं'	
	ते 'से'	

मध्य ह्रस्व स्वर शब्द की अन्तिम स्थिति में प्रयोग नहीं होते। कांगड़ी बोली में केवल एक ही उदाहरण देखने को मिलता है जो इस स्थिति में प्रयोग होता है जैसे : कि कम्पनयुक्त उत्क्षिप्त व्यञ्जन और स्पर्शी व्यञ्जन स्वर के साथ एक आक्षरिक संरचना में प्रयोग नहीं होते।

स्वर+व्यञ्जन+स्वर : एक आक्षरिक शब्द

इस तरह के एक आक्षरिक शब्दों का प्रयोग काफी प्रचलित है, जो निम्नलिखित उदारहणों द्वारा स्पष्ट है।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
जीहम 'जिह्वा'	गाला 'गाली'	क्हर 'घर'
सेहर 'शहर'	संत 'साधू'	ट्ंहड 'ढूंढना'
सूहज 'विचार'	देस 'देश'	पहर 'झरना'
बोहज 'बोझ'	पर 'बल्कि'	पूहत 'भूत'
कोहड़ 'कोढ़'	कुन 'कौन'	पेहज 'भेजना'
मेहद 'जगह'	बाग 'बाग'	कहट 'कम'
	चौल् 'चावल'	
	लई 'के लिये'	
	कुस 'किस लिये'	
	नाज 'अनाज'	
	बाल 'नजदीक'	
	साल 'साल'	
	गल 'बात'	
	पैर 'पांव'	
	माल 'धन'	
	सिर 'सिर'	
	तर 'तैरना'	

इन शब्दों में दीर्घ और ह्रस्व दोनों स्वरों का प्रयोग होता है। उत्क्षिप्त व्यञ्जन और स्पर्शी व्यञ्जन ड़, न, ल, फ, थ, ठ शब्दों के आरम्भ में प्रयोग नहीं होते। स्वर ई, इ, ओ सीमित रूप में प्रयोग होते हैं।

स्वर+व्यञ्जन+व्यञ्जन : एक आक्षरिक शब्द

इन आक्षरिक शब्दों के उदाहरण सीमित हैं। जैसे :

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
उंहग 'माफ,	अस्त 'छिपना'	

अम्ब 'आम'
अगग 'आग'
अमन 'शान्ति'
अड़ब 'जिद'

इस प्रकार के शब्द निम्न सुर के अधीन प्रयोग नहीं होते। उच्च स्वर का भी केवल एक उदाहरण देखने को मिलता है। स्वर भी आक्षरिक शब्दों के निर्माण में सीमित रूप में प्रयोग होते हैं।

व्यञ्जन+व्यञ्जन+स्वर : एक आक्षरिक शब्द

इस प्रकार के एक आक्षरिक शब्द भी बहुत कम हैं, और यह निम्न स्वर के अधीन प्रयोग में नहीं आते। उच्च सुर के अधीन प्रयोग होने वाले शब्द भी सीमित हैं। स्वर स्पर्श, संघर्षी और स्फोटित, व्यञ्जनों के साथ प्रयोग में नहीं आते।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	क्या 'क्या'	ग्राह 'टुकड़ा'
	ग्रां 'गांव'	सक्रोह 'गांव'
	गलो कीड़ा'	
	रसो 'भोजन की तैयारी का स्थान	
	बसो 'आराम करना'	
	सना 'रुई'	

व्यञ्जन+स्वर+व्यञ्जन+व्यञ्जन : एक आक्षरिक शब्द

इन शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	टिगट 'टिकट'	बहनज 'बांस'
	कन्न 'कान'	गोहरन 'अस्तबल'
	सप्प 'सांप'	
	रोंग 'फली'	
	रिच्छ 'रीछ,	
	रुक्ख 'बृक्ष'	
	सड़क 'सड़क'	
	सनक 'इशारा	

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	सिंग 'सींग'	
	सनक 'सांस लेना'	
	दालत 'अदालत'	
	पुच्छ 'पूछना'	
	वगत 'समय'	
	जतन 'यत्न'	
	कलम 'कलम'	
	रासन 'राशन'	
	चुस्त 'चालाक'	
	जनम 'जन्म'	
	रकम 'रकम'	
	मुगर 'मुक्ट'	
	नजर 'देखना'	
	सरम 'शर्म'	

दोनों ह्रस्व व दीर्घ स्वर व्यञ्जनों के साथ प्रयुक्त उत्क्षिप्त व्यञ्जन न, ड़, ल शब्दों के आरम्भ में प्रयोग नहीं होते और न ही इन शब्दों का प्रयोग निम्नसुर के अधीन होता है। उच्च सुर वाले स्वर भी सीमित संख्यां में पाये गये हैं।

व्यञ्जन+व्यञ्जन+स्वर+व्यञ्जन : एक आक्षरिक शब्द

इस प्रकार के एक आक्षरिक शब्द भी अधिकतम संख्या में पाये जाते हैं, जैसा उदाहरण द्वारा प्रतीत होता है।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
स्नेहा 'बुलावा'	स्याल 'सर्दी'	थ्ह्यार 'हथियार'
मसहेस 'मासी'	दराड़ 'मूसलाधार'	मल्हार 'इच्छा'
ग्रेहण 'ग्रहण'	स्वाव 'समान'	प्यहाग 'सुबह'
	कड़ाक 'कड़करी आवाज'	गमाहन 'गरूर'
	जमीन 'भूमि'	
	चलाक 'चुस्त'	
	टरंक 'ट्रंक'	
	डकार 'डकार'	
	दलास 'जगह'	
	नरेल 'नारियल'	

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
	ख्यात 'छूट देना'	
	लयार 'ताजी'	
	बनास 'उजाड़'	
	बलेड 'बलेड'	
	तमोल 'शादी के समय उपस्थित'	

कांगड़ी बोली में शब्द के आरम्भ में संयुक्त व्यञ्जनों का प्रयोग सम्भव है उत्क्षिप्त व्यञ्जन शब्द के आरम्भ में स्वर तो संयुक्त व्यञ्जनों की बनावट में प्रयोग नहीं होते । दीर्घ स्वर तो प्रायः प्रयोग हो सकते हैं लेकिन ह्रस्व स्वर सीमित रूप में प्रयोग होते हैं ।

व्यञ्जन+व्यञ्जन+स्वर+व्यञ्जन+व्यञ्जन : एक आक्षरिक शब्द

संयुक्त व्यञ्जन, स्वर से पूर्वाङ्ग और परांग दोनों स्थितियों में प्रयोग हो सकते हैं। इस प्रकार के शब्द सीमित रूप में पाये जाते हैं ।

उच्च सुर	मध्य सुर	निम्न सुर
ग्रहस्त 'परिवार'	करोनक 'पहरेदार'	करुहनग 'उड़ना'
	स्यानप 'विद्वान'	
	परन्त 'वाद में'	

इसी प्रकार द्विआक्षरिक और बहुआक्षरिक शब्दों में तीनों सुरों के अधीन प्रयोग सम्भव है जिसका उल्लेख इस लेख में नहीं किया गया है केवल एक आक्षरिक शब्द संरचना पर ही विचार किया गया है । ●

उत्तर क्षेत्रीय भाषा केन्द्र
पटियाला

हिमाचल प्रदेश के मण्डी जिला का कमलाह गढ़

—डॉ० कांशी राम आत्रेय

हिमाचल प्रदेश का मण्डी क्षेत्र प्राचीन काल से ही महान सांस्कृतिक गौरव और गरिमा का प्रतीक रहा है। यूं तो सम्पूर्ण हिमाचल प्रदेश सांस्कृतिक और धार्मिक महानता के लिये प्रसिद्ध रहा है किन्तु वर्तमान मण्डी क्षेत्र जो प्राचीन काल में माण्डव्यनगर के नाम से प्रसिद्ध था अपने धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के कारण ब्रह्म ऋषि वशिष्ट, राज ऋषि विश्वामित्र, ऋषि पराशर, मुनि शुकदेव और व्यास के साथ सम्पृक्त है। एक लोकोक्ति के अनुसार :-

हिलमिल प्रजा यह सारी,
गाये गीत प्यारा ।
बहती रहेगी जब तक, व्यास की पुण्य धारा,

कमरू शिकारी तुङ्ग नारगू को चोटियों पर—
फहराये यश का झण्डा, चमके प्रताप तारा ।

अर्थात जब तक कामरू, शिकारी तुङ्ग पार नारगू की चोटियां अपने उन्नत भाल के साथ खड़ी हैं और व्यास पावन सलिला बह रही है तब तक उसकी ख्याति की पताका उन्नत रहेगी।

लोमश ऋषि, पद्म सम्भव, गुरू गोबिन्द सिंह, सिकन्दर, नेपाल नरेश और नागपुर नरेशों का यहां आगमन इस क्षेत्र की महत्ता के प्रमाण हैं। कमलाह क्षेत्र भी पार्श्वती धरती का आज भी लोक प्रचलित नाम कालर सम्भवत: कहलूर से सम्पृक्त अथवा कालरू जाति विशेष या शासन क्षेत्र विशेष के कारण यह नाम रखा होगा। वर्तमान कमलाह गढ़ प्राचीन जनपद कालर में स्थित है। आज भी इस क्षेत्र के निवासी अन्य क्षेत्रों में कालरू कहलाते हैं। कालर एवं कालरू शब्दों का ऐतिहासिक परिचय मण्डी के इतिहास में कालरू जाति विशेष के लोगों द्वारा मण्डी की राजवंशीय सुधी प्रथा में असवर्ण लोगों को सुधी प्रथा द्वारा परस्पर मिलाने के आन्दोलन में वर्णन मिलता है। कहलूर के शासक देवी चन्द और कालरू लोगों की सहायता से शमशेर सेन ने उन असवर्णों को समसत्ता मिलने से वंचित रखा था। कालरू राजा के अत्यन्त मुंह लग बन गए थे। अन्त में राजा शमशेर उनके प्रति कुपित हो गए थे जिससे वे कई मौत के घाट भी उतार दिये गये। इस प्रकार इस क्षेत्र का सम्पर्क कहलूर से होने और कालरूओं के आगमन से भी कालरू अथवा कहलूर' नाम काऔचित्य बैठता है। लोक गीत में भी लोकनायक मनिया के साथ कालरूओं का वर्णन मिलता है यथा :-

:बारा बीहां नन्दपुर कालरू, सौगी हेसियां रा जोड़ा हो,
चौहारी जो नीगे म्हारेग्रा सनिया, लूणा रा तोड़ा हो,

अभी भी कालरू परिवार इसी नाम से पुकारे जाने वाले इस क्षेत्र के गांवों (घरवासड़ा सरी और गरली) में विद्यमान हैं। इसी कालर में कमलाह का दुर्गम गढ़ भी है। इस क्षेत्र के अजेय गढ़ों में कमलाह और अनन्तपुर गढ़की गौरव गाथा जनवासियों को उल्लसित करती है। हिमाचल प्रदेश ही नहीं अपितु गढ़वाल भी अपने तथा कथित नामों से गढ़ों के कारण ही गढ़वालविख्यात हुआ है। पहाड़ी प्रदेश में इन गढ़ों ने ही वहां के शासकों की अष्पठकुराइयों को कायम रखा था। यह गढ़ मण्डी जिला की तहसील सरकाघाट में सोनखड्ड तथा बक्कर खड्ड के मध्य भाग में लगभग ४४७१ फुट की ऊंचाई पर स्थित है। सोन खड्ड के रेत कणों से कुछ वर्ष पूर्व तक सोना निकाला जाता रहा है। इसके रेत कणों में सोना बहता है किन्तु इसकी समुचित खोज और स्रोतों को उपेक्षित ही रखा जाता रहा है। जिसकी वर्तमान काल में वैज्ञानिक उपकरणों और यन्त्रों द्वारा खोज की जा सकती है। बक्कर खड्ड की दुर्गमता ही प्राय: इस गढ़की दुर्जेयता और दुर्भेद्यता का मूलाधार है। बक्कर खड्ड के विषय में एक लोकोक्ति प्रचलित है :—

बक्कर खड्ड सब सभी खड्डां दी राणी,
न हिउदा धुप्प न तौंदिया पाणी,
बरसाती जान किहां बचाणी ।

लोक धारणा में यह सब खड्डों की रानी है। ग्रीष्म काल में पानी की बूंदे तक नहीं मिलती है और सर्दियों में धूप का नामों निशान नहीं होता है। वर्षा काल में जान बचाना सम्भव नहीं है। इसी कारण इसके समीपस्थ वासियों का लोक जीवन पर्याप्त कठोरता का अभ्यासी है। वर्तमान कमलाह गढ़ की नींव का मुहुर्त्त विचार भूतपूर्व विधायक श्री भीखम राम लौंगणी गांव के पूर्वज पण्डितों द्वारा किया गया बताते हैं। यह वर्तमान कमलाह गढ़ १६२५ ई० में राजा सूरज सेन ने ही बनवाया था और मुहुर्त्तविचार की बात भी उन्हीं के काल के इतिहास में वर्णित मिलती है। मुहुर्त्त विचार के उपलक्ष में प्राप्त शासन भूमि (भूमिकर रहित भूमि) भी उनके समीमस्थ गांव में आदेश पत्र के साथ उन्हीं के पास विद्यमान है। किन्तु उससे पूर्व के गढ़ का इतिहास लेखक ने विशेष और पूर्णतया वर्णन ही नहीं किया गया है। डॉ० शही दुल्ला और डाक्टर बड़थ्वाल के मतानुसार सिद्ध काल का इतिहास कमलाहिया सिद्ध सहित ५०० ई० से ७०० ई० तक सिद्धकाल की इतिहास यात्रा का एक उपेक्षित पक्ष है। यह १५०० वर्ष पूर्व का अन्धकार के गर्त में डूबा अस्पष्ट इतिहास है। इसके अनेकानेक तथ्य पर्याप्त अध्ययनों के अभाव में अद्यावधि अज्ञात हैं। सिद्ध काल से पूर्व यक्षवाद २०० ई० से ५०० ई० के इतिहास की कड़ियां भी सिद्ध–इतिहास से सम्पृक्त हैं। मण्डी अपनी गढ़ियों और मढ़ियों के लिये अतीव महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। कहते हैं मण्डी क्षेत्र में ३६० गढ़ थे। एक लोकोक्ति में कहा है।

'पांज गढ़ पण्डोह, सात गढ़ सुराज, नौगढ़ नाचण'

इस प्रकार लगता है कि वैदिक कालीन शम्बर और दिवोदास की युद्ध भूमियां भी कहीं इसी क्षेत्र में पश्चिमी हिमालय में ही थीं। वहीं उनकी ये पाषाण पुरियां (गढ़) भी विद्यमान होंगीं। कालर अजबर सेन से पूर्व भी एक स्वतन्त्र जनपद था। वहां की अल्प-ठकुराइयों का सहस्रों वर्ष पूर्व का इतिहास अपनी गौरव गाथा संजोय है। आज भी इसकी गाथा की विशृंखलित लड़ियां और कड़ियां वर्तमान हैं। महान् इतिहास वेत्ता ग्रिफिन ने पहाड़ी प्रदेशों के अन्य गढ़ों में इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और दुर्जेय गढ़ माना है। जिस पर मण्डी की स्वतन्त्रता निर्भर रही है। गढ़ की यह पहाड़ी लगभग आठ दस मील तक जनयित्री देवी की धार के समानन्तर फैली है। रावगढ़, कांढा पतन, और सिद्ध पुर आदि स्थानों के पश्चिम में व्यास नदी से लगभग दस मील की दूरी पर और सन्धोल दतन से भी लगभग यह इतनी ही दूर है। यह गढ़ एक छोटी सी पहाड़ी पर स्थित है। इसके चारों ओर बड़े-बड़े दर्रों वाली घाटियां और दांतेदार पर्वत खण्ड विद्यमान हैं। जिनके द्वारा गढ़ के पास का जल प्रवाह सोन अथवा बक्कर खड्डों में प्रवेश करता है। तोफें आदि ले जाने के लिए अत्यन्त ही दुर्गम क्षेत्र हैं। कमलाह गढ़ की सीमा के अन्तर्गत ही विभिन्न छः पुर—कमलाह, चौकी चौबारह, पद्मपुर, शमशेर पुर और नरसिंह पुर हैं। गढ़ की निर्माण शैली अत्यन्त चक्रव्यूह के ढंग की थी। इसमें प्रवेश के लिए अन्धेर गली थी। इसे नीहारवली (अन्धकूप) कहते थे। शत्रु किले के प्रवेश का वास्तविक द्वार दूसरी ओर से ही था। प्रवेश द्वार तक सीढ़ियों के ऊपर से जाना पड़ता था।

सिकन्दर धार से दृश्यमान यह गढ़ बरोट फ़र्टीगरी और मोराह (मुराह) धार से वर्षा कालीन सर्पिलीर (Serpentine) नदियां हरी हरी लहलहाती घास से भरी पहाड़ी धरती के खण्ड के मध्य विराजमात धौलाधार से सुदूर घोगरधार के सम्मुख शिवालिक श्रृंखला से परे अनेकानेक योद्धाओं का सम्भवतः यक्षों का और यक्षवाद का अवश्य केन्द्र रहा होगा। क्योंकि आज भी सिद्धों की सिद्ध माढ़यों और थौने का यक्ष (जाच्छ) और जाच्छ नामक अनेक यक्ष सभ्यता के चिन्ह भी मण्डी क्षेत्र में यत्रतत्र अपने नाम के स्मारक तथावत बनाए हुये हैं। हिमाचली लोकवार्ता में यक्ष वर्णन चिर प्राचीन यक्ष कुबेर काल की कड़ियों को जोड़ने में सहायक सिद्ध होती हैं। सर्वप्रथम इस गढ़ पर १६८९ ई० की राजासूरज सेन के काल को मण्डी की चढ़ाई और मण्डी को आग लगाना तथा कालर का घेराव प्रसिद्ध है। किन्तु इस क्षेत्र को अधीनता में स्थाई रूप से विजय करने का इतिहास में कोई वर्णन नहीं। ऐतिहासिक वर्णनों में आक्रमणों और घेरावों के वर्णन में अन्तिम रूप में यह गढ़ किसी से विजय न किया जा सका।

जालन्धर के राज्यपाल अदीना बेग के १७४५ ई० की चढ़ाई के समय दलीप सिंह गुलेर, अजीत सिंह, जसवाल, टेहरी सिंह मानकोट, देवदत्त नूरपुरो यदुपाल कुटलैहड़िया और मदनपाल भावौरिया भगांल के राय तथा इनके साथ कटोच राजा पर चढ़ाई की तो सबने अधीनता स्वीकार करली थी और जयसिंह पुर और बीजापुर को विजय कर नष्ट कर डाला था। अदीना बेग को कमलाह गढ़ की दुर्भेद्यता का पता राजा दलीप सिंह गुलेरी से चल पड़ा था। अतः आक्रमण के बिना अधीनता मनवाने की युक्ति ही बरती गई थी। वे इसे विजय करने का साहस न कर पाये थे। इसकी दुर्विजयता की धाक पहाड़ी राजाओं से लेकर सिक्ख और अंग्रेजों तक थी।

महाराजा संसारचन्द अपने दो बार के प्रयत्नों के पश्चात भी इस किले को विजय करने में असफल रहे थे। इसके लिये उसने मुरली और माणकू नामक अधिकारियों को अपनी और उत्कोचदेकर गांठना चाहा था। किन्तु भागु पालसरा ने राजा को सूचित कर दिया था। चिरकाल पश्चात राजा ईश्वरीसेन कानों को भागु के प्रति विषाक्त कर दिया था। वह १०० व्यक्ति लेकर रक्षार्थ जा रहा था तो उसको उसके विरुद्ध विपरीत दोषारोपण कर दिया था कि वह राजा के विरुद्ध विद्रोह कर रहा है। अन्त में इसी कारण उसकी मृत्यु के आदेश मनिया नामक उस समय केटोली के एक मुखिया के हाथ भेज दिये थे।

चक्रवर्ती बनने के महत्त्वाकांक्षी राजा ससांर चन्द को अपने शत्रुओं के विरुद्ध सिक्खों से सन्धि करनी पड़ी थी। वे गढ़ विजय करने में सफल न हो सके थे। उसने केवल १७९२ ई० में मण्डी पर आक्रमण करके कुछ काल तक अनन्तपुर का कुछ भाग अपने शासन में मिलाया था। महाराजा रणजीतसिंह की सेना में सेनापति वैंटुरां जो कभी फ्रांसीसी सेना में वाटरलू का १८१५ का युद्ध लड़ा था लाहौर में सिक्ख सेना का मुखिया था। वह भी महाराणा रणजीत सिंह के सेनापति के रूप में मण्डी की ओर सिकन्दर धार से प्रवेश करके चढ़ा था। सब गढ़पतियों के अधीनता स्वीकार करने के सन्धि पत्र लिखे गये थे किन्तु कमलाह गढ़ का नहीं। इस गढ़ को पीछे खड़ा छोड़ कर सिक्ख अपनी विजय और आगे बढ़ना असम्भव ही मानते थे।

पद्मपुर को सूरज सेन मण्डी ने चालाकी द्वारा अधीन किया था जिस प्रकार बजीर जालपू ने अनन्तपुर किला को नरीपुरी देवी के दर्शनों का बहाना बनाकर पालकी में सिपाही भर कर लाकर अपने अधीन किया था।

पद्मपुर के राणा भी शिकार करने बाहर चले गये थे उसी समय सेना ने इस पर अपना अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार १६५३ ई० में सूरजसेन ने पटड़ी का गढ़ भीविजय किया था। इससे ज्ञात होता है कि राजा सूरज सेन ने कई गढ़ों को विजय करके उनका निर्माण भी कराया था। कमलाह गढ़ का निर्माण भी पुराने किले को विजय करके ही करवाना सम्भव था। किन्तु इस बात का उल्लेख करना इतिहासकार भूल ही गया है।

सिक्ख काल में सेनापति वैंटुरा (Ventura) को मण्डी विजय करने का कार्य सौंपा गया था। जनरल वैंटुरो सिकन्दर धार के मार्ग में अपनी फौजों के डेरे डालता हुआ द्रंगहणी तथा कमलाह में से दोनों ओर से आया था। बलबीर सेन इस समय मण्डी में न थे। जनरल वैंटुरा ने मण्डी पधारने पर बलबीर सेन को अपने कैम्प में बुलवाया। राजा हाथी की पीठ पर बैठ कर वहां गया। वैंटुरा ने बलबीर सेन को सब गढ़पतियों को विवश करके सन्धिपत्र हस्ताक्षर के लिये आदेश किये थे किन्तु बलबीर सेन ने स्पष्ट कह दिया कि मेरी इस आज्ञा को सब गढ़पति स्वीकार करलें यह सम्भव नहीं है। अतः वैरागढ़, मानगढ़और शाहपुर में सिक्खों का गढ़पतियों ने सामना किया था। युद्ध बिना अधीनता न मानी थी। जैसी उनको सम्भावना थी कमलाह ग०को विजय करने में उनके दांत खट्टे हो गये थे। कमलाह गढ़ की सेना पूर्णतया स्वतन्त्र थी। अतएव

यह गढ़ महाराजा के नियन्त्रण से बाहर था। शक्तिशाली महाराजा वैंटुंरा भय से इस गढ़ को पीठ के पीछे खड़ा छोड़ कर आगे नहीं बढ़ना चाहता था। सितम्बर १८४० में वैंटुंरा की सेना इस ओर अग्रसर हुई किन्तु असह्य शीत और बीमारी के प्रकोप के कारण जनरल वैंटुंरा को करारी हार सहनी पड़ी और पीछे हटकर अपनी फौज को पुनः तैयार करके दलबल से धावा बोलना पड़ा और इस बार फ्रांसीसी सेना में प्रशिक्षित वाटरलू के योद्धाओं में युद्ध प्रिय सेनापति वैंटुंरा ने २९ दिसम्बर १८४० को कमलाह गढ़ को अपने अधीन तो कर लिया था किन्तु सिक्ख सेना मण्डी में कर्नल फाल्केस के अधीन छोड़ कर वैंटुंरा आगे बढ़ते गये। सिक्ख सेना महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात स्वतन्त्र ही हो चुकी थी। मण्डी में कमलाह में रखी इस सेना ने विद्रोह करके कर्नल फाल्केस को मौत के घाट उतार दिया। इस प्रकार फ्रांस का प्रशिक्षित जनरल भी कमलाह गढ़ की विजय में एक बार मुह की खाकर हार गया था। सिक्खों की इस स्वतन्त्र सेना में मंगल सिंह रामगढ़िया ने कमलाह गढ़ के आसपास के सारे गांव जला डाले थे किन्तु कमलाह गढ़ को घेराव मात्र तक ही विजय कर पाये थे। इससे पूर्व और पश्चात यह गढ़ कभी अधीन नहीं किया जा सका था। सिक्ख सेना के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् स्थानीय कालरू वीरों ने भी उसका कई ढगों से चालाकी वरत कर पत्थर-सोठा मार कर नाश कर डाला था। कुछ सिक्ख यहीं की अधीनता स्वीकार कर यहीं के निवासी बन गये थे। उनमें से एक सिक्ख परिवार घरवासड़ा गांव में बसकर कुछ वर्ष पूर्व ही मरा था।

मण्डी के इतिहास में वर्णित है कि कहलूर के युद्ध में खानु ने वैरागी का सिर काट कर कमलाह गढ़ में लाया था और विश्वासघात के कारण उस पर एक एक जूता मरवा कर उसे सिद्धपुर में दवाया गया था। टिक्कर गांव निवासी श्री नारायण राजपूत और उसके पूर्वज, ढ़ली गांव निवासी प्रधान और मासला, गरली और रोसो गांवों के डांगू (पहरेदार-चौकीदार) और घरवासड़ा गांव के विप्ट लोग इन गढ़ों के अनेकानेक बृतान्त सुनाते हैं। उस समय भी गढ़ों की रक्षार्थ स्थानीय बनी बदूकें जो बीसों फुट लम्बी होती थीं रखी रहती थी। कहते हैं गढ़ में विद्यमान तोपें भी स्थानीय ही बनी हैं। आज भी भग्नावस्था में पड़ी इन तोपों पर फारसी लिपि में कुछ लेख लिखा मिलता है। ये उस काल की कला और कारीगरी का सुन्दर नमूना पेश करती हैं।

गुरसेन के काल में सुकेत से सगंठन कर्ताओ के विरूद्ध लड़ाई के अवसर पर भी कमलाह से सैनिक योद्धा ले जाये गए थे। सिक्खों की लूटपात अत्याचारों और खेती बाड़ी के विनाश की घटनाओं की याद आज भी लोगों को भयभीत कर डालती है। गुरू गोबिन्द के काल से मण्डी के साथ सिक्खों का अच्छा सम्बन्ध रहा था किन्तु रणजीत सिंह की स्वतन्त्र सेना के समय मार काट हो गई थी।

कमलाह गढ़ का मण्डी के इतिहास में महनीय गौरव रहा है। आज यह गढ़ भग्नावस्था

में पड़ा है। सिक्खों के अत्याचारों के कारण शीघ्र ही मण्डी नरेश ने भी अंग्रेजी सरकार के साथ १८६६ ई० में सन्धि कर ली। यह सन्धि १८४६ ई० की लाहौर सन्धि का अंग ही थी। जिसमें सतलुज के बाएं भाग के क्षेत्र मण्डी सुकेत सिक्खों द्वारा मुक्त किये प्रदेशों में थे जो सीधे अंग्रेजों के अधीन हो गए थे। सन्धि की चौथी शर्त में लिखा है कि कमलाह और अनन्तपुर गढ़ को भूमिसात् करके इन्हें पुनः कभी भी न बनवाया जावे।

वर्तमान काल में यह स्थान जिज्ञासु शोधार्थी के लिए प्राचीन युद्ध कला, किला बन्दी और मण्डी तथा हिमाचल की अप्पठकुराइयों और राणों के जनपदों के इतिहास की खोज का एक सबल ऐतिहासिक प्रमाण हैं। राजा विजय सेन के काल तक इस गढ़ में भैंसें भेड़ बकरियां तथा दूध घी का कर भी उगाहकर जमा रखा जाता था। मण्डी नरेश की ही यह सम्पति समझी जाती थी। स्वतन्त्रता पूर्व और उसके पश्चात् तक भी कुछ नेगी (सारजंट) सिपाही चौकीदार और कैथ (मुन्शी) आदि सरकार की ओर से रखे हुये थे। भण्डारों में दारू बारूद पुराने अस्त्र-शस्त्र और गुरू गोविन्द द्वारा भेंट की गई पाण्डुलिपियां राजा सिद्ध सेन के काल से कमलाह में रखी गई थी। दुर्भिक्ष के कारण कमलाह के अन्न भन्डारों में से कोदरा सांवक आदि अन्न लोगों को दिया जाकर उनकी प्राण रक्षा भी होती रहती थी।

यह राज्यकाल का अन्तरक्षार्थ धरोहर स्थान था। जिसे वाह्याक्रामक नष्ट नहीं कर सकते थे। मण्डी के महादुर्भिक्ष काल में सस्ते मूल्य पर लोगों को अन्न प्रदान कर जनता की प्राण रक्षा भी एक बार की गई थी। सैंकड़ों वर्षों के सैंकड़ों मन के अन्न भण्डार को एक अग्निकाण्ड द्वारा अधिक हानि पहुंची थी। इसके पूर्व भी शस्त्र और वस्त्रों को नरेश के शस्त्रागार और भण्डार मण्डी में सैंकड़ों वर्ष पूर्व भी ले जाया गया था। कई सौ तलवारें और सैंकड़ों मन अन्न, वस्त्रों को ले जाया गया था और फैंक भी दिया गया था कुछ बरवाद हो गए कुछ वस्तुएं कहीं निगरानी के अभाव में खिसका भी दी गईं थीं। समय के साथ कुछ गलसड़ कर खराब प्रायः हो गई। वे युद्ध कला के सर्वोचित नमूने और दस्तकारी की सुन्दर सामायो थी। इस क्षेत्र के पत्था (अन्न भरने का बरतन) कुप्पी (तेल की लकड़ी की बोतल) कांघी कंघा, काठड़ (लकड़ी की गागरी) आदि बनाने और चरखा तथा चारपाई के पाए बनाने, भेड़ बकरी पालने के कारण ऊनी बस्त्र' चमड़े की खालें और खालड़े (खाल की बोरी) का कार्य देते थे। गढ़ में यह स्थानीय सामग्री प्रचुरता में दर्शनीय थी। आज भी आस-पास की वस्तियों में उक्त दस्तकारी की वस्तुएं गढ़ की साभग्री की यादगार लिये हुये है। वस्तुए रखने की लकड़ी अथवा बांस की पिटारी और खैनणु (मजूषा) और मिट्टी के बरतनादि उस काल की कला के सुन्दर नमूने प्रस्तुत करते हैं। राज्य काल में ही सामग्री जल भी गई थी। किन्तु अभी तक भी चार तोपें विद्यमान हैं। कहते हैं मण्डी के अन्य क़िलों की सामग्री भी इसी गढ़ में सुरक्षा के लिये रखी रहती थी। एक विशेष उपजाति के चलान लोग डॉग (चौकीदार) रखे जाते थे। उनकी स्वामी भक्ति के कारण ही उस वंश के लोगों का स्थाई पेशा वही रखा गया था।

श्री रघुनाथ, धन्ना कायथ (मुनशी) सरी गांव श्री पीरू एवं उसके वंशज श्री प्रधान और

श्री शिव्बू राम टिक्कर गांव एवं मासला, रोसो के नेगी वहां नरेश काल में अन्त तक सेवारत थे। कुछ सिक्ख घरवासड़ा आदि गांव में यहीं के निवासी बनकर भी कई दिन यहीं बस चुके थे किन्तु ऐसी घटनाएं अति-भून साक्ष्य में मिलती हैं।

कमलाह की राणी गुफा एक रनवास था। उसमें विशेषावसरों पर राणियां सुरक्षित रखी जाती थीं। कई नरेशों ने मण्डी के युद्ध काल में राणियों को वहीं रक्षार्थ भेजा था। एक सुन्दर बारहरी (दरबार हाल) रुलीराज दरबार की बैठक, कई ठण्डे और शीतल स्वच्छ जल के तालाब भी थे। जिनको आज भी तथावत देखा जा सकता है। काफी दूर पीपल के पास एक बावड़ी और चम्बा का नौण पनघट था जहां से राजा और शाही वंश को पानी जाता था। आज भी कमलाह गढ़ के सिघाणा (सिंह काल) के लोमहर्षक वृत्त सुनाने वाले डॉगू वंशज श्री बालिया और श्री कालू जिन्हें उनकी वफादारी के लिये सजाओ पीपलू नामक गांव में भूमि प्रदान की गई थी जीवित हैं। श्री पीरू के पोते श्री नारायण टिक्कर और रूपणू जिसने सिक्खों को मार कर वीरता में भूमि भी ली थी के वंशज भी जीवित हैं।

कमलाह और अनन्तपुर गढ़ के काल की सिक्खों के आंतक की कहानियां बृद्धाओं से सुनने को प्रचुरता में मिलती हैं। बताया जाता है कि घोड़े और खच्चरों ने अन्न को लिद् (गोबर) बना दिया था। गोबर को धोकर लोग अन्न का संग्रह कर गुजारा किया करते थे। सिक्ख लोग लोगों को पकड़ कर तथा सब कुछ लूटपात कर ले जाते थे। रूपणू नामक एक व्यक्ति को पकड़ कर ले गए थे और उसके सिर पर तलवार का बार कर केवल उसके साफे को काटा था जबकि उसने एक सिक्ख का सिर काट कर ठिहरा (जमरेहड़) की कोतवाली में पेश किया था और उसके उपलक्ष में उसे भूमि भी प्रदान की गई थी।

राजा जोगिन्द्र सेन के काल तक कमलाह गढ़ की तोपें चलाई जाती थी। चार अभी भी कमलाह गढ़ में ही विद्यमान हैं। मण्डी नरेश के जन्म दिन पांच भादो को ये तोपें चलती थी। लोगों ने इनके धूड़ धमाल और खड़ग बिजली आदि नाम रख दिये थे। इन पंक्तियों के लेखक ने तोपों के धमाके अपनी बाल्यावस्था में अवश्य ही आश्चर्य के साथ कई बार सुने थे। आठ दस मील दूर होने पर भी यहां दिल दहला देने वाले सुनाई देते थे। कहते हैं उस काल की तोपों की लड़ाई ने आंतक से इस क्षेत्र की गर्भवतियों के गर्भपात तक का तहलका मचा दिया था। किन्तु पहाड़ी लोगों ने भी अन्त तक डट कर सामना किया था।

प्रथम आषाढ़ को चिर प्राचीन सिद्धों के काल से ही मेला भी लगता है। बकरे कटते रहते थे। महीने के बारह बकरे मण्डी नरेशों की ओर से कटने आदेशित थे, किन्तु राजा जोगिन्द्र सेन के आदेश से केवल एक बट्टी (पांच सेर) मिश्री का भोग लगाना ही आदेशित होकर बकरों का बध बन्द कर दिया था। इस क्षेत्र में कर रूप में घी, अन्न, शहद, आम आदि की प्रथा का परिचय यहां के स्थानीय निवासी श्री हीरा सिंह अपने पूर्वजों से सुनी बातों सहित देते हैं। वे इस गढ़ को सरकारी संरक्षण मिलने के प्रति अति श्रद्धालु तथा प्रयत्नशील रहे हैं। किन्तु यह ज्ञान न होने से कि यह पुरातत्व विभाग का तथा सरकार का पारस्पारिक कार्य है

आज तक गुमराह होते रहे हैं। इस गढ़ को पुरातत्व विभाग के ध्यान में लाने का प्रयत्न उचित रूप में हो ही नहीं पाया। कालर क्षेत्र के स्वतन्त्रता सेनानी शेरे हिन्द श्री हरि सिंह के दादा नम्बरदार बृकमू गुरहा के (संग्रह कर्त्ता) थे। इसी क्षेत्र के आई० ए० एस० श्री लालमन उपसचिव भारत सरकार रक्षा विभाग के पूर्वजों और श्री इन्द्र सिंह अधिवक्ता के पितामह नम्बरदार श्री जवाहर सिंह तथा स्वर्गीय आई० ए० एस० श्री प्रेम सिंह पठानिया अधीक्षक पोलिस विभाग के पिता श्री सरजन सिंह नम्बरदार होने के कारण इन गढ़ों के वृत्तान्तों का विस्तृत परिचय देते रहे हैं और सरकारी आदेशों का पालन प्रसारण मण्डी नरेश जोगिन्द्र सेन के राजान्त तक करते और करवाते रहे हैं। बेगार की प्रथा और अन्य राजादेशों के लोमहर्षक अन्य किस्से आज भी उनके समकालीनों से स्वयं सुने जा सकते हैं। स्वर्गीय प्रोफेसर श्री बिधि सिंह जी ने एक बार इन ऐतिहासिक स्थलों के सरकारी सरंक्षण की बात दैनिक ट्रिब्यून में प्रकाशित कर सुझाई थी। डॉ० हरवंश लाल शर्मा अध्यक्ष हिन्दी विभाग हिमाचल विश्व विद्यालय शिमला (लेखक के पी० एच० डी० के शोधपरीक्षा पर्यवेक्षक) ने एक लेख मण्डी क्षेत्र के प्रसिद्ध दुर्ग, सातवीं कक्षा की पाठ्य पुस्तक में परिचयार्थ दिया था। इसमें सारे इतिहास का मात्र संक्षिप्त पृष्ठ लिया गया था। सिक्खों का सिंघाणा (सिंह काल) आज भी स्थानीय लोगों की जीभ पर चढ़ा है। गढ़ों की लूटपाट और सिघों (सिक्खों) के अत्यचारों के आंतक से आज भी लोग भयभीत से हो जाते हैं। उधर राजा संसार चन्द ने नबाव गुलाम मुहम्मद को शरण देकर रूहेलों द्वारा भी आंतकित करादिया था। आज भी रूहेलों के जालिम होने का परिचय 'मण्डी के रूहेलों' की लोकोक्ति रूप में मण्डी सदर के बाहर भी भय सूचक प्रचलित लोकोक्ति है। इस प्रकार युग-युगान्तर तक चट्टानी टीलों पर की दुर्भेद्य गढ़ियां अमर रूप में अपनी प्राचीन युद्ध कला सहित इतिहास के स्मारक स्थलों के रूप में विद्यमान रहेंगी। इनके बिशेषाध्यनन तथा राजकीय संरक्षण की महत्ता किसी को भी अनावगत नहीं। इनकी उपेक्षा करना निजराष्ट्रीय गौरव का खण्डन ही है।

इस गढ़ के प्रति पुरानत्व विभाग के पंजीकरण अधिकारी श्री प्रमोद कांत शरण की निरीक्षण रिपोर्ट के सुझाव (६-११-७७ — ८-११-७७) के निरीक्षण काल के जिन्हें इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं गढ़ में पहुंचाया था निम्नवत पठनीय हैं :—

१. कमलाह दुर्ग को अविलम्ब राजकीय स्तर पर संरक्षित स्मारक घोषित किया जावे।

२. कमलाह दुर्ग को सरकाघाट छूहींघाट कच्ची सड़क से शीघ्र सम्पृक्त किया जावे और उक्त सड़क को मोटर रोड़ में परिवर्तित करने के लिये लोक निर्माण विभाग के अधिकारियों से अनुरोध किया जाये तथा सरकार का ध्यान दुर्ग की महत्ता की ओर आकृष्ट किया जावे।

३. दुर्ग पर उगी जंगली घास तथा पेड़ पौधों को तुरन्त कटवा देने की व्यवस्था की जावे तथा इन पेड़ पौधों की जड़ों को नष्ट करने के लिये किसी रासायनिक द्रव्य का प्रयोग किया जावे। जिससे पौधे पुनः उत्पन्न होकर दीवारों की आयु कम न कर सकें।

४. मालखाना (स्टोर) के नष्ट प्रायः कमरों की इटों आदि को हटाकर निकटतम स्थान

पर एकत्रित करवा लेना उपयुक्त होगा तथा टूटती हुई दीवारों को उपरी सतह पर बालू सीमेन्ट चूना से निर्मित मसाले से उसका टिपका करवा दिया जावे। जिससे पानी के कारण क्षरण रूक जावे।

५. गेट (Gate) नं २, ३, तक सीढ़ियों की मुरम्मत करके उन्हें सुरक्षित एवं आकर्षक बनाया जा सकता है।

६. दुर्ग के सामान यथा तोपादि एक कोरोगेटिड शीट का रोड बनाकर उसके अन्दर रखने की व्यवस्था की जानी चाहिये। जिससे उनका सरंक्षण हो और अधिक विनाश रुक पाये।

कमलाह दुर्ग की देख रेख और उसकी अन्य सामग्री की देख रेख के लिये तथा रखाव के के लिये कम से कम दो स्मारक सेवकों के पद सृजन करके शीध्र नियुक्त कर देना चाहिये। जब तक पद सृजन नहीं हीते तब तक के लिये दो व्यक्तियों को दैनिक मजदूरी के आधार पर कमलाह दुर्ग में नियुक्त कर देना चाहिये। वे उगी हुई घास और झाड़ियों को साफ करेंगे यह उनकी ड्यूटी का भाग समझा जाना चाहिये। साथ ही मकान के मलवों को भी एक सुरक्षित स्थान पर एकत्रि॰ करेंगे।

७. जब तक पूर्वोक्त प्रबन्ध नहीं होता तब तक संस्कृति विभाग की पुरातत्व राशि से इस किले की सरक्षंण की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे उसका और अधिक क्षय न हो।

पंजीकरणाधिकारी ने अपनी बहुपृष्ठीय रिपोर्ट में इसके मालखाना, दरवारहाल, निरीक्षक बुर्ज, प्रवेश द्वारों तथा पत्थर, लकड़ी के आकार प्रकार का माप तथा विवरण भी प्रस्तुत किया है। सुरक्षात्मक दीवार का वर्णन दिया है। सुरक्षात्मक दीवार निर्माण कला के दृष्टिकोण से यह हिमाचल के दुर्गों में सचमुच ही अद्वितीय स्थान रखती है। उन्होंने तोपों पर के फारसी लेख भी देखे तथा इन्हें मुगल कालीन बताया। दुर्ग की प्रादेशिक महत्त को ध्यान में रख कर सरकार को इसे प्रदेशस्तर तथा राष्ट्रीय स्तर पर स्मारक घोषित करना चाहिये। इतिहास वीरता कालर क्षेत्र की चिरकालीन ख्याति है। श्री शोभाराम नरेश कालीन सत्ता को चुनौती देने वाले शूरवीर इसी चट्टानी क्षेत्र में चट्टानी इरादों को लेकर उत्पन्न हुये थे जिसने सत्ता को झुका डाला था।

आज भी कालरू और कालर क्षेत्र मण्डी भर में धाक से याद किया जाता है। मण्डी के इतिहास में फारसी में लिखा है

'राज भवानी सेन दा,
दुहाई शोभा राम दी'

शोभाराम ने बेगार और अत्यचारों के विरुद्ध आवाज उठाई थी। उसने बेगार और कर उगाहने के प्रति जनरोष को राजा के सामने रखा था। २०००० मनुष्य मण्डी पड्डल के मैदान में न्याय की मांग के लिये एकत्र हुये थे। राजा ने भ्रष्टाचारियों को निकाल कर उस शूरवीर की बात

सुन कर उससे सन्धि कर ली थी। कालर क्षेत्र के शूरवीर सूरमें सपूत शोभाराम की यह वीरता इस जनपद के इतिहास और गढ़ की ख्याति को हिमाचल के इतिहास में मूर्धन्य स्थान प्रदान करती है। हमारी इन विभूतियों के प्रति विस्मृति कृतघ्नता की कलुषित अवहेलना ही कही जायेगी। अतएव इन के शीघ्र ऐतिहासिक गौरव झलकाने वाले स्मारक बनने अत्यन्त अनिवार्य हैं।

●

राजकीय उच्च पाठशाला,
श्याह, जिला कुल्लू

बूढ़ा केदार : एक पौराणिक स्थल

—हेम प्रभा शर्मा

मण्डी जिला के करसोग से उत्तर की ओर लगभग ग्यारह-बारह हजार फुट की ऊंचाई पर शिकारी देवी की अन्तर प्रतिमा है। उससे नीचे चार-पांच मील की उतराई पर बूढ़ा-केदार नामक पौराणिक–स्थल है। इस स्थान पर प्रकृति की अनुपम छटा अब भी मोह लेने वाली है। देवदार, तोश आदि गगनचुम्बी वृक्षों से आच्छादित इस बीहड़ वन में जहां यात्रियों को बाघ आदि हिंसक जन्तुओं का भय बना रहता है वहां इस वन में उगी लम्बी-लम्बी घास, महकते रंग-बिरंगे पुष्प, खामोशी को चीरता पक्षियों का मधुर कलरव आदि यात्रियों के लिए विशेष आकर्षण होते है।

बूढ़ा केदार इस स्थान से सम्बन्धित कुछ ऐसी परम्पराएं प्रचलित हैं जो इसे पौराणिक प्रसंगों से जोड़कर एक प्राचीन पौराणिक स्थल साबित करती हैं। लोक धारणा के अनुसार प्राचीन समय में भस्मासुर नामक दैत्य ने भगवान शिव की घोर तपस्या की और परिणाम यह हुआ कि आशुतोष शिव उस दैत्य पर प्रसन्न हो गये और वर प्रांगने को कहा। नीच प्रकृति वाले भस्मासुर ने शिव से यह वर मांगा कि मैं जिसके सिर पर हाथ रखूं वह भस्म हो जाये शिव ने तथास्तु कह दिया।

कुटिल बुद्धि भस्मासुर भगवान शिव के वर की प्रमाणिकता को परखने के लिए शिव के सिर पर ही अपना हाथ रखकर प्रयोग करने लगा। जब शिव ने देखा कि यह दुष्ट तो मुझे ही भस्म करना चाहता है तो वे भयभीत होकर उस स्थान से भाग गये। आगे-आगे शिव भागे जा रहे थे और पीछे भस्मासुर उनके सिर पर हाथ रखने के प्रयास में दौड़ा जा रहा था। आखिर शिव ने एक स्थल पर बूढ़े बैल का रूप धारण किया और अपने सींगों से पृथ्वी को खोदकर उसमें समाते रहे। इस प्रकार उनके सिर का अग्र भाग नेपाल जा पहुंचा और पूंछ उसी स्थान में रह गई। इस स्थान पर अब भी बैल की पूंछ का निशान है। यह ऊखल के आकार की भांति आठ-दस फुट धरती में गहरा है। इसी से इस स्थान का नाम बूढ़ा केदार पड़ा।

कहा जाता है कि भस्मासुर ने तो फिर भी उनके सिर पर हाथ रखने की ठान रखी थी। जब भगवान बिष्णु को यह विदित हुआ कि भस्मासुर शिव को भस्म करने के लिए अब भी तत्पर है तो उन्होंने भगवान शिव की रक्षा के हेतु अपना विश्वमोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के आगे खड़े हो गये। उस विश्वमोहिनी को देखकर भस्मासुर मोहित हो गया। वह विश्वमोहिनीं भस्मासुर से बोली कि अगर तू मेरे सामने नृत्य करेगा तब मैं तेरी पत्नी बन जाउंगी।

दैत्य उसके रूप लावण्य को देखकर पहले ही कामाशक्त हो गया था और वह तुरन्त झूम-झूमकर नृत्य करने लगा। ज्यों ही उसने नृत्य करते हुए अपने सिर पर हाथ रखा वह वहीं पर भस्म हो गया।

शिवजी के बच जाने और भस्मासुर के भस्म हो जाने की स्मृति में अब भी यहां पर हर वर्ष ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की गंगा दशमी को मेला लगता है। इस स्थान पर बैल की पूंछ के आकार का धरती में जो गढ़ा बना है उसमें थोड़ा बहुत पानी भी होता है जिसकी गंध गोबर मिश्रित जल की तरह होती है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि गंगा इस दिन इस गोबर मिश्रित जल में प्रवेश होती है तभी इसको गंगादशमी कहते हैं। और लोगों की यह धारणा भी है कि गंगादशमी को किसी बावड़ी या नल से भर कर रखा गया पानी वर्ष भर खराब नहीं होता, गंगा जल की तरह शुद्ध रहता है।

'बूढ़ा केदार में गंगा दशमी के दिन हजारों श्रद्धालु एकत्रित होते हैं। यह मेला एक रात एक दिन चलता है। छोटा-मोटा बाजार भी सज जाता है। लोगों को ठहरने के लिए पहाड़ों में छोटी-छोटी गुफाएं (डबार) हैं, जिनमें लोग एक रात ठहरते हैं। सारी रात कीर्तन-भजन में बीत जाती है। भोले शंकर की जय-जयकार के साथ श्रद्धालु नृत्य भी करते हैं। यहां एक स्वच्छ जल का नाला भी है, जहां लोग स्नान करते हैं। लोग प्रातः तीन-चार बजे से ही स्नान करना शुरू कर देते हैं। कई लोग स्नान करते समय एक—दूसरे पर पानी गिराते हैं, और कुछ ऐसा भी मानते है कि इस तरह धर्म का रिश्ता जुड़ जाता है। सबेरे आठ-नौ बजे तक स्नान करने का कार्य सम्पन्न हो जाता है। उसके बाद लोग उस ऊखल के आकार के गढ़े में प्रवेश करते हैं जिसे बैल को पूंछ का स्थान माना जाता है। उतरने के लिए उसमें सीढ़ियां जैसी है। भीतर एक आरम्पारिक पुजारी खड़ा होता है। लोग भेंट अर्पित करके, पुजारी से वहां के पवित्र जल का आचमन करके लौट पड़ते हैं। यहां पर श्रद्धालु लोग गंगादशमी से पहली रात को आते हैं। गंगादशमी के दिन स्नान करके 'बूढ़ा केदार नाथ' जी के दर्शन करके, अपने जीवन को सार्थक समझकर घर लौट पड़ते हैं।

लोगों का यह विश्वास है कि इस स्थान से गंगादशमी के दिन ही लौटना पड़ता है, क्योंकि दूसरे दिन निजला एकादशी को यहां पर नहीं ठहरना पड़ता है। अगर कोई दूसरे दिन यहां रुकेगा वह अगले जन्म में कीड़ा बनता है ऐसी धारणा है। यह भी कहा जाता है कि जिनके बच्चे नहीं होते हैं वे लोग अगर 'बूढ़ा केदार' जी की श्रद्धा भाव से मनौती करे तो उनके बच्चे जरूर होते हैं और जिनके 'बूढ़ा केदार' की मनौती के बाद बच्चे होते हैं, वे लोग अपने बच्चों को उनके दर्शन के लिए वहां अवश्य लाते हैं। वापसी पर कई लोग शिकारी देवी के रास्ते से आते हैं कई दूसरे रास्ते से लौट पड़ते हैं।

यहां पर स्थाई वस्ती तो नहीं है। कुछ नीचे गुजर-गड़रिये आदि अपनी भैंसों व भेड़-बकरियों को लेकर आते-जाते रहते हैं। काफी नीचे-नीचे छोटे-छोटे गांव भी हैं।

'बूढ़ा केदार' के रास्ते में जड़ी-बूटियां पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं। एक शालंग-

मिसरी नाम की बूटी भी यहां मिलती है जिसको पानी में डालने से पानी जम जाता है। रास्ते में इन बूटियों के प्रभाव से भूख भी बहुत लगती है ऐसा मानते हैं। कई जड़ी-बूटियों की तीक्ष्ण गन्ध से तो सिर भी चकराने लगता है। लोग कहते हैं कि रात को चमकने वाली बूटियां भी यहां पायी जाती हैं।

यहां यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में भी 'बूढ़ा केदार' की इस लोक कथा से काफी मिलता-जुलता उल्लेख मिलता है जिससे ऐसा लगता है कि यह एक पौराणिक स्थल है।

●

पाल भवन संजौली
शिमला-१७१००६

कांगड़ा के मंदिरों का ऐतिहासिक और कलात्मक महत्त्व

— शमी शर्मा

कांगड़ा प्रदेश का प्राचीन नामत्रिगर्त है। इसका उल्लेख महाभारत में हुआ है। त्रिगर्त से अभिप्राय तीन गढ़ों से है जो रावी, बाणगंगा, व्यास और सतलुज के प्रवाहित होने से निर्मित होते हैं। कल्हण की राज तरंगिणी के तीसरे तरंग में त्रिगर्त का वर्णन इस प्रकार है !

त्रिगर्तेषु दयाशीलं चम्पायां मद्र माडले (श्लोक १५३१)

पुराण काल में इसे जलन्धर पीठ का नाम दिया गया। जालन्धर का वर्णन हमें पद्म पुराण में उपलब्ध होता है। उत्तर खण्ड के अध्याय १०५ में 'विष्णु जालन्धर गत्वा' इस आरम्भ से मिलता है। भगवान विष्णु ने सुदर्शन चक्र से दैत्य राज जालन्धर का सिर काट दिया और पश्चिमी हिमालय में फैंका जहां उसके कान पर एक गढ़ (दुर्ग) का निर्माण हुआ। उस के पश्चात् यह प्रदेश कान्+गढ़ अर्थात् कांगड़ा कहलाया। समस्त पर्वतीय प्रदेश विभिन्न पीठों में विभक्त था। नेपाल, कामाख्या, कूर्माचल, जालन्धर, शारदा ये पांच पीठों में समस्त हिमाचल विभक्त रहा है। ये पीठ शिव और शक्ति के आराधकों ने बनाए हैं। कल्हण की राज तरंगिणी में एवं ह्यूनसांग के यात्रा विवरणों में भी जालन्धर तक त्रिगर्त नाम आए हैं। जालन्धर पीठ का आदिस्थान मध्य केन्द्र विन्दु ब्रजेश्वरी देवी का मन्दिर कांगड़ा है। इसके चारों ओर अनेक देवी देवताओं सिद्धों के स्थान हैं जिसे जालन्धर पीठ परिक्रमा के अन्तर्गत किया गया है। आचार्य अभिनवगुप्त के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान-दाता गुरू आचार्य शम्भु नाथ इसी ब्रजेश्वरी देवी के मंदिर में रहते थे। प्राचीन भारत में मन्त्र तन्त्र विद्या के चार केन्द्रों में से एक केन्द्र कांगड़ा का मंदिर रहा है।

कांगड़ा का ब्रजेश्वरी देवी का मंदिर अत्याधिक प्राचीन है। मुसलमान आक्रमणकारियों के द्वारा यह कई बार लूटा गया। सुप्रसिद्ध फ़रिश्ता के मतानुसार सन् १००८ ई० में महमूद गजनवी ने अपने चौथे आक्रमण में इस समृद्धशाली, ख्याति पूर्ण देवालय के कोष को लूटा। अपार धन सम्पत्ति महमूद गजनवी अपने साथ ले गया। यह लूट सुविख्यात सोमनाथ और मथुरा वृन्दावन के मंदिरों से दूसरे स्थान पर थी। इस आक्रमण में महमूद गजनवी सात लाख स्वर्ण दीनार, सात सौ मन सोने और रौप्य के थाल, दो सौ स्वर्ण ईंटे, दो हजार मन चांदी और बीस मन हीरे और जवाहरात और माता की विशाल सौम्य मूर्तियां भी अपने साथ ले गया। सन् १०४५ ई० में देहली के राजा को पुनः आभास हुआ और उन्होंने घोषणा की कि माता गजनी से लौट कर पुनः कांगड़ा

में आ गयी। फिर क्या था दर्शकों की अपार भीड़ लगने लगी। अल्पकाल में ही अतिशीघ्र अपार धन वैभव सम्पत्ति जितना महमूद गज़नवी ले गया था उससे दुगनी एकत्रित हो गई। १३६० ई० में फिरोज़ शाह तुगलक ने इसे फिर लूटा। सन् १५४० ई० में शेर शाह सूरी के सेनापति खवास खां ने इसे फिर लूटा और माता जी की मूर्तियां और तांबे का छत्र उठा ले गया और उसे महल में पानी का बर्तन बनाया। सन् १९०५ के भूकम्प के पश्चात् और उससे पूर्व कांगड़ा टैम्पल रेस्टोरेशन कमेटी ने इसे पुनः बनाया। सिक्ख बन्धुओं ने इस पुनीत कार्य में बहुत सहयोग दिया। विशाल, ऊंचा आकार, आकाश से बातें करते शिखर वाला और वृत्ताकार लघु छोटे कलशों से सुशोभित सादी सरस पृष्ठभूमि, अपने ही ढंग की बनी वर्तमान युग के शिल्पियों ने इसे अत्याधिक सरल और स्पष्ट रूप में निर्मित किया है। इसकी रचना में विशेष सादगी को ध्यान में रखा है और पाषाण एवं मूर्तिकला का महत्त्व प्रतिपादित नहीं किया है। इसकी स्थापत्य कला अपनी विशिष्ट है जिसमें सादगी को सर्वोपरि रखा गया है। भूकम्प से पूर्व यह सिक्ख शिल्पकला विशेषज्ञों द्वारा बनाया हुआ प्रतीत होता। सैय्यद मुहम्मद के शासन काल सन् १४०० ई० में इसका पुनः जीर्णोद्वार हुआ था। तदनन्तर महाराणा रणजीत सिंह ने नगरकोट की प्रसिद्ध विजय प्राप्त करने के पश्चात् देशा सिंह मंजिठिया को अपना शासनाधिकारी नियुक्त किया जिन्होंने इस भव्य मंदिर को सन् १८१० ई० में एक नया रूप देकर सुन्दरता में बदल दिया। इसकी आकृति छत्रों पर चौकोर और कोनों पर बर्जों के साथ, पांच गोलाकार गुम्बज से जुड़ी हुई थी। इतिहासकारों का कथन है कि लाहौर के शासक महाराज शेर सिंह ने सिंहसनासीन होते ही सन् १८४१ ई० में इसे सुनहरा बना दिया।

इतिहास के प्रारम्भिक युग से लेकर शताब्दियों तक भारतवर्ष की जनता की अगाध श्रद्धा का प्रतीक, विद्वज्जनों मनीषियों का आलोकस्तम्भ, साधन केन्द्र मुमुक्षुओं का भक्ति पीठ के रूप में, भगवती जालपा का यह देवालय अचल खड़ा है। हिमालय पर्वत की धौलाधार शैलमाला के नीचे अपने अपूर्व प्रकृतिक सौंदर्य और दिव्य शक्ति से सुदूर भारतवर्ष के यात्रियों को यह देवालय आकर्षित करता आ रहा है। चैत्र और अश्विन शरद् नवरात्र के समय में समस्त भारत एवं राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत से अपार जन समूह अपने हृदय में अटूट श्रद्धा और अचल निष्ठा लिए हुये मंदिर में उपस्थित होते हैं। प्राचीन काल से चला आ रहा हिन्दू राजाओं का उपासना-केन्द्र, शक्ति का अवलम्ब, और धन सम्पत्ति की निधि कई बार लूटा जाने पर भी वह अपनी प्रसिद्धि के कारण वैसा ही खड़ा है।

कांगड़ा घाटी अथवा त्रिगर्त प्रदेश का दूसरा प्रसिद्ध मन्दिर स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना है बैजनाथ का मंदिर है। यातायात की बड़ी सड़क जो अमृतसर पठानकोट को कुल्लू लाहौल स्पिती, शिमला, तिब्बत से जोड़ती है उसी के किनारे बैजनाथ का पड़ाव या ठहराव आ जाता है। जो शदियों से चला आ रहा है। प्राचीन काल में व्यापारियों का यही ठहराव था जो किन्नर प्रदेश और तिब्बत के साथ व्यापार करते थे। बैजनाथ का प्राचीन नाम कीर ग्राम था और कीर जाति के लोग यहां रहते थे। आर्यों के साथ युद्ध होने पर यह जाति सुदूर हिमालय में धकेल दी गयी।

स्थापत्य कला एवं मूर्तिकला की दृष्टि से बैजनाथ का मंदिर भारतवर्ष के मंदिरों में से एक

है । यहां के राजाओं के महलों के खण्डहर जोखपुर में अब डाक बंगला बनाया हुआ है। यहां पर भारी तांबे के सिक्के पाए गये हैं। राजे कांगड़ा (सुशर्मपुर) के अधीन रहने वाले छोटे राजे थे। मंदिर बिन्दुका नदी के बांयें तट पर तकरीबन चार हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित है। धौलाधार की प्राकृतिक मनोहर छटा, दृष्यावलि यात्रियों को आनन्द विभोर कर देती है। कल-कल करती बिन्दुका नदी गहरी बहती है।

मंदिर में प्रवेश करते ही, सर्वप्रथम गर्भगृह में प्रस्तर कला एवं मूर्तिकला के दिव्य दर्शन हो जाते हैं। चार स्तम्भों पर बड़ी २ शिलाओं को परस्पर जोड़ कर अष्ट दल कमल वाली छत बनाई गयी है जिसमें शिल्पियों ने हथोड़े और छेनी की नोक से कमाल कर दिखाया है जिसे वर्तमान मशीन कदापि नहीं कर सकती। सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् आज भी यह ऐसी प्रतीत होती है कि अभी कारीगर ने बनाई है। संगतराशी का यह एक अनुपम नमूना है। विभिन्न मूर्तियों के मध्य में आशुतोष भगवान महादेव ध्यानावस्था में हाथ में त्रिशूल चार भुजाएं और त्रिशूल लिये बनाए गये हैं। पार्वती कमलासन पर विराजमान है। मंदिर की बाहरी परिक्रमा के चारों ओर भी छोटे छोटे मंदिर बने हुये हैं। इनके आस पास अनेक देवी देवताओं, शक्तियों, दिग्पालों नवग्रहों की भित्ति मूर्तियां पाषाण पर टंकित है। शिवालय पर खुदी हुई कला दर्शनीय है। गुप्त शैली में बना, पाषाण कला का भव्य प्रतीक है। गुप्त शिखर शैली में बने चम्बा और भरमौर के मंदिर इससे भी बड़े हैं किन्तु बैजनाथ के मंदिर का अपना ही विशिष्ट महत्त्व है। गर्भगृह के मण्डप के आगे पूर्व की ओर भगवान भूतनाथ वैद्यनाथ शंकर का शिव लिङ्ग है। बाहिर दीवारों पर छज्जेदार खिड़कियां लगी हैं। इसके चारों ओर कोणों पर शिखर वाले मंदिरों जैसे पड़ाव लगे हैं। इस प्रकार एक विशिष्ट कलात्मकता के दर्शन होते है। इसकी तुलना नहीं की जा सकती।

इतिहास की दृष्टि से मंदिर की बाहिर मण्डप में शारदा लिपि में दो शिलालेख लगे हैं। आहुक और मन्युक दो व्यापारियों ने अपना समस्त धन इस मंदिर निर्माण में लगा दिया जिसे दक्षिण भारत के शिल्पियों ने जो सुशर्मपुर (कांगड़ा) से आए थे बनाया। शिलालेख उस समय के आर्थिक और प्राकृतिक जनजीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं। इसका समय सन् ८०४ ई० बैठता है जिसमें इसका जीर्णोद्धार हुआ है। वास्तव में मूल रूप में मंदिर बहुत पुराना है।

कांगड़ा के मंदिरों में स्थापत्य कला का अद्भुत नमूना मसरूर के मंदिर हैं। उन मंदिरों को देख यात्री मन्त्रमुग्ध हो जाता है। मंदिर पौंग बांध के सिरे पर नगरोटा सूरियां के पास स्थित हैं। इनके निर्माण की न तो कोई तिथि मिलती है और न ही ज्ञात हुआ है कि ये किसने बनाये चट्टानों को खोद कर ये मंदिर बीच में से निकाले गये है। इनमें कोई ईंट पत्थरों का प्रयोग नहीं हुआ। इन मंदिरों को चट्टान काट कर बीच में से कुरेदा गया है। जो कला की दृष्टि से विशेष उपलब्धि है। समस्त उत्तर भारत में यही एक कृति है जिसकी अनुकृति अन्यत्र उपलब्ध नहीं होती।

मुरलीधर, नर्वदेश्वर के मंदिर टीरा सुजानपुर जिला हमीरपुर जो कभी जिला कांगड़ा

में था अपनी चित्रकला और भित्ति कला के लिए अनुपम है। इसमें कई स्थानों पर सोने के पानी का रंग भी दिया गया है। महान् कला प्रेमी राजा संसार चन्द ने कांगड़ा के चित्रकारों से यह अमर चित्रकला मंदिर के प्राचीर पर अंकित करवाई है। कलाकारों ने अमर चित्रकारी कर के कूचियों और रंगों से कला कृतियों में प्राण भर कर इसे जीवन्त बना दिया है। नर्वदेश्वर के मंदिर में प्राण डाल दिये हैं।

जलती हुई ज्वालाओं का मंदिर ज्वालामुखी आदिकाल से चला आ रहा है। यहां स्थापत्य कला को महत्त्व नहीं है। जालन्धर पीठ में इसे विशेष स्थान प्राप्त है। इ.के निर्माण की तिथियों का भी कुछ पता नहीं चलता। इतना अवश्य है कि यह अभीष्ट मनोकामना पूर्ण करने वाला अभीष्टशक्ति का मंदिर अकबर महान् ने नहर डाल कर इसे बुझाने का दुस्साहस किया परन्तु असफल रहा। परास्त होकर उसने सोने का छत्र चढ़ाया जिसे अभिमान पूर्ण अर्पित करने से वह लोहे में बदल गया।

त्रिगर्त भूमि, जालन्धर पीठ कांगड़ा के देवालय ऐतिहासिक वृक्षों और प्राचीन स्थापत्य कला में भारत के अन्य मंदिरों की श्रेणी में एक साथ बैठते हैं। समस्त भारत से सैंकड़ों यात्री, नर नारी प्रति वर्ष इन मंदिरों में शिव शक्ति के दर्शनार्थ यात्रा करते हैं। कांगड़ा प्रदेश जहां अपनी सुन्दरता के लिए सुविख्यात है वहां अराधना, पूजा केन्द्र इन देवालयों के लिए भी प्रसिद्ध है। धौलाधार शैलमाला के हिम धवल शुभ्र रजत किरीट के समान शिखरों के नीचे, नील गगन की छाया में इन देवालयों के कलश प्रभात की प्रथम किरणों में सुनेहले स्वर्णिम हो उठते हैं और यात्री एकान्त घाटी में ये दृष्य देख कर आनन्द विभोर हो जाता है।

●

राजकीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला
परौर, जिला कांगड़ा

बिशु मेला

— पूर्ण सिंह ठाकुर

बिशु शब्द बिश से बना है। बिश स्थानीय भाषा में उस बैल या सांड को कहते हैं जो स्वतन्त्र छोड़ा जाता है। इस बैल व बच्छड़े को स्वतन्त्र करने की जो तिथि निश्चित है वह बिशु मेला का दिन कहलाता है।

प्राचीन काल से सब रिश्ते क्रम अनुसार ही बनते हैं परन्तु बहन भाई का रिश्ता धर्म के नाम से ही जुड़ जाता है। धर्म से बनाया गया भाई व बहन का सत्कार असली बहन भाईयों से अधिक माना जाता है।

किसी समय में यह परम्परा जोरों पर थी कि बहन को पूजनीय समझा जाता था और उन्हें साल में एक बार विशेष पकवान की सौगात देकर सहर्ष सत्कार किया जाता था। जिसे स्थानीय भाषा में 'पाहुड़' भी कहा जाता है। धीरे २ इस प्रथा में कमी आती रही लेकिन वर्तमान समय में यह प्रथा बिल्कुल समाप्त नहीं हुई है। कहीं-कहीं पर 'पाहुड़' का रिवाज आज भी देखा जा सकता है। बहन-भाई का यह रिश्ता मनुष्य तक ही सीमित नहीं बल्कि देवी देवताओं ने भी धर्म के साथ इसे अपनाया है। ऐसे ही धर्म का रिश्ता व पाहुड़ की कहानी आज भी दोहराई जाती है।

किसी समय में भेखली का मन्दिर सारी के नाग देवते का बताया जाता है और गांव सारी में भी इस का ही स्थान था। किंवदन्ति है कि बलोहणी गांव का एक व्यक्ति पालसरा वंश का भेखली के पास ही भेड़-बकरियां चराने आता था। वह बांसुरी बजाता था तथा साथ के अन्य छोटे-२ बच्चे नाच किया करते थे।

एक दिन वहीं एक गुफा से दो लड़कियां निकल कर उन बच्चों के साथ नाचने लगी। पालसरे ने देखा कि इन दोनों लड़कियों के एक पांव जमीन पर नहीं लगते है। आखिर क्या बात है ? उसने उन्हें पकड़ने की कोशिश की। एक लड़की को तो उसने पकड़ लिया तथा दूसरी वहां से भाग कर पुईद नामक स्थान पर पहुंच गई। जिस लड़की को उसने पकड़ लिया उसने उसे अपना धर्म का भाई मान लिया और कहा कि मैं आप की नित्य पूजा करूंगी। माता के मन्दिर में एक पत्थर की मूर्ति रखी गई है। शायद वह उसी पालसरे की होगी क्योंकि पूजारी माता की पूजा से पूर्व उसकी पूजा करते हैं।

माता भुवनेश्वरी भेखली में साक्षात प्रकट हो गई। वह अब जगह की तलाश में थी। माता

ने जाकर सारी के नाग देवते से कहा, 'नागा नागा सरयालटु भाईड़े लाई हाका'। हे नाग देवता ! आप को सारी से कोई आवाज लगा रहा है। भोला नाग झट से बाहर निकला और आवाज सुनने के लिये थोड़ा सा ऊपर जाकर एक बड़े पत्थर पर कान लगाकर सुनता रहा। काफी देर तक देखा मगर कोई भी आवाज सुनाई नहीं दी। तब भोले नाग जी समझ गये कि भुवनेश्वरी ने मुझसे धोखा किया। जब वह अपने मन्दिर के बाहर पहुंचा तो माता ने कहा, 'नाग भाई बाहरे बेश हाऊं ता नरोला न न्हांइदी सा' अर्थात नाग भाई आप बाहर ही बैठो मैं तो स्नान कर रही हूं। नाग देवता विचार में पड़ गया कि अब क्या किया जाये। कुछ विचार के पश्चात् नाग ने कहा, 'बेहणीए धर्मारे बचन नरोल् तौणे ऐ पात्थर मुखे' अर्थात बहिन धर्म का बचन देता हूं कि यह मन्दिर आप को तथा मैं अपने लिए यही पत्थर रख लेता हूं।

न जाने कितनी सदियों पुराने यह बचन हुए होगें उसी दिन से नाग ने बहिन के लिये मन्दिर तथा अपने लिय पत्थर रखा हुआ है। आज जब भी भेखली में मेला लगता है तो सारी के नाग देवता को उसी पत्थर पर बैठा देखा जा सकता है।

जब माता की पालकी मन्दिर से वाहर निकलती है तो सारी का नाग देबता भी उठकर ऊपर उस बड़े पत्थर पर जाता है जहां पर वह किसी समय में आबाज सुनने गया था। कुछ समय पश्चात् माता की पालकी कुछ कदम ऊपर आती है तो नाग देवता वहां से वापिस लौटता है। रास्ते में आकर वे इस तरह मिलते हैं कि मानो सचमुच ही कुछ बातें कर रहे हों। उसके बाद देवता अपने पत्थर के सिंहासन पर बैठता है तथा माता अपने रक्षक के साथ कुछ देर तक नाच करती है तथा उसके बाद मन्दिर में जा बैठती है।

नाग देवता भी अपनी बहिन के लिय 'पाहुड़' देता है यह 'पाहुड़' लगभग ग्यारह साल के बाद दिया जाता है। पुराने जमाने में बहिन के लिय 'पाहुड़' एक मिट्टी के बर्तन में जिसे 'बाधरण' कहते हैं, उसमें अनाज डालकर दिया जाता था। यह प्रथा समाप्त हो गई केवल भेखली माता के पास आज भी यह प्रथा कायम है। माता का भाई पालसरा बैशाख मास में उस 'बाधरण' 'पाहुड़' को माता के लिय अर्पित करता है।

देवी का दूसरा भाई सारी नाग है। वह भी अपनी बहिन को 'पाहुड़' देता है जिस की कार्यविधि इस प्रकार होती है।

चैत्र का प्रथम दिन तथा बैशाख का प्रथम दिन शुभ माने जाते है। चैत्र का प्रथम दिन 'जेठा बिश्शु, तथा बैशाख का प्रथम दिन 'कौवा बिश्शु' कहलाता है। यहां का बिश्शु प्रथम बैशाख 'कौवा बिश्शु' के दिन ही मनाया जाता है।

नाग देवता माता के लिय 'पाहुड़' एक छोटा सा बच्छड़ा देता है। यह बच्छड़ा बस्तोरी गांव से लाया जाता है जिस की कीमत ५० पैसे होती है। बच्छड़े को सारी

में लाया जाता है। नाग उसे पूरे बाजे के साथ ला कर भेखली माता को भेंट करता है। इस मेले में देवी तथा देवता के रथ नहीं निकलते केवल गुरों के द्वारा ही कार्य किया जाता है। माता उस बच्छड़े को उसी समय अपने गेट से बाहर निकाल कर सदा के लिए उसे स्वतन्त्र कर देती है।

आधुनिक लोग देवी देवताओं की शक्ति पर बहुत कम विश्वास करते हैं। आज से लगभग तीन साल पहले भेखली में देवता ने माता के लिये 'पाहुड़' अर्थात बच्छड़ा दिया था। वह आज भी लोगों के सामने देवशक्ति का उदाहरण है। वह पूरा विरश अर्थात सांड बन गया है। वह बाजार की गलियों में रहता है। सभी लोग उसे देवता का रूप मानते हैं क्योंकि यदि कोई बच्चा भी उसके गले लिपट कर खेलना चाहे तो वह उसके साथ बड़े प्यार से खेलता है। वह देवता का रूप नहीं तो और क्या हो सकता है।

●

गांव कटाहर डाक भेखली
जिला कुल्लू (हि॰प्र॰)

हिमाचल प्रदेश—और नागपूजन

—खेम राज गुप्त 'सागर'

आस्था और पूजन, कब, कैसे, और कहां शुरू हो जाए इसके बारे में कुछ भी कहना इनता आसान नहीं। देवी-देवताओं के पूजन के बारे में भी तरह २की दन्त कथाएं या लोक कथाएं हमारे समाज में प्रचलित हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यह कथाएं लोग कहते सुनते आए हैं। नाग पूजन के बारे में भी हिमाचल प्रदेश में कई कथाएं कही सुनी जाती हैं जिनमें से एक कथा यों है—

कहते हैं आज से हजार-दो हजार साल पहले हिमाचल प्रदेश के महासू क्षेत्र में टिक्कर धार के पास वाले गांव भराण में एक ब्राह्मण परिवार रहता था। पांच भाई थे इस परिवार में, जिनके नाम थे कालू, गाजन, मोहल, चान्द और चानण ! कालू सबसे बड़ा था। वैसे भी कालू को साधू सन्तों की संगत में बड़ा आनन्द मिलता था। जहां भी उसे किसी साधू सन्त महात्मा का पता चलता, वह वहां जरूर पहुंचता था। एक बार एक साधू उसी के गांव में आ गए और अपना धूना रमा दिया 'केलों' के एक विशाल पेड़ के नीचे। कालू के लिए तो यह मुंह मांगी मुराद थी। वह उन्हीं महात्मा के पास चला गया। साधू महात्मा ने भी उसे बड़े स्नेह और प्रेम से अपने पास बिठाया। रात वहीं गुजारने को कहा। कालू की खुशियों का कोई ठिकाना नहीं था।

कहते हैं रात को साधू महाराज ने एक खास प्रकार का भोजन तैयार किया और मात्र चार ग्रास कालू को खाने के लिए दिए। न जाने क्यों कालू ने केवल दो ही ग्रास खाए और दो संभाल कर रख लिए।

रात आधी बीतने लगी थी, कि कालू ने देखा धूने के पास कालीन बिछ रहे हैं धूप अगर-बत्तियां जलाई जा रही हैं और थोड़ी देर के पश्चात् बेहद खूबसूरत नर्तकियां वहां नृत्य करने लगी कालू यह सब देख कर हैरान हो रहा था। उसने सोचा भोर होते ही वह साधू महाराज से सब कुछ विस्तार से पूछेगा।

सवेरा हो गया। कालू ने महसूस किया कि वह बहुत गहरी नींद से सो कर उठा है। जैसे ही उसे रात के नृत्य की याद आई तो यह देख कर उसकी हैरानी का ठिकाना नहीं रहा कि वहां केवल वही है न साधू महाराज है न उनका वह धूना, न रात के नृत्य के कोई निशान। अचानक उस का हाथ अपनी उस जेब में गया जहां उसने दो ग्रास उस विशेष भोजन के सम्भाल कर रखे थे। जब उसने जेब से अपना हाथ बाहर निकाला तो दो काले पत्थर उसकी हथेली पर थे।

तभी बेहोशी की ही हालत में कालू उस साधू महाराज की खोज में निकल पड़ा। बर्षों तक खोजता रहा लेकिन साधू महाराज उसे नहीं मिले। पागलों की सी हालत तो हो गई थी कालू की। और एक रोज ऐसी हालत में उस की मृत्यु भी हो गई।

कहते हैं मरने के पश्चात् कालू एक खौफनाक सांप बन कर वहीं घूमने लगा। सांप इतना बड़ा और भयानक था कि लोग उसे देखते ही डर कर भाग जाते। आखिर लोगों ने पूजा द्वारा उस सर्प को प्रसन्न करने की बात सोची। पूजा की गई और कालू सर्प ने उन लोगों को डराना छोड़ दिया। आकाश वाणी हुई कि आज से नाग देवता की पूजा करो-और तब से प्रदेश में नाग पूजन की प्रथा शुरू हो गई। इस कथा को कितना प्रमाणित माना जाए इस बात को अगर यहीं छोड़ दिया जाए और नजर डाली जाए प्रदेश के प्रमुख क्षेत्रों पर तो हमें पता चलता है कि, चम्बा मण्डी, सिरमौर, बिलासपुर तथा अन्य कई जिलों गावों में नागों की पूजा हजारों वर्षों से प्रचलित हैं। अकेले चम्बा जिले में ही नागों के पचास से अधिक मन्दिर ऐसे हैं, जहां नियमित रूप से पूजन होता है, मन्नतें मनौतियां की जाती हैं।

चम्बा के भरमौर क्षेत्र (प्राचीन ब्रह्मपुर) के लोग नाग देवता को वर्षा का देवता मानते हैं। इन का विचार है कि नाग देवता देवराज इन्द्र से वर्षा मांग कर लाते हैं। अगर नाग देवता प्रसन्न हैं तो समय पर वर्षा होगी और यदि किसी कारण अप्रसन्न हैं तो सूखा पड़ेगा। कुछ नाग देवताओं को प्रसन्न करने के लिए मेंढ़ों और बकरों की बलि दी जाती है, और जो नाग देवता बलि स्वीकार नही करते उन का पूजन घी और दूध से किया जाता है।

नाग मन्दिरों में विग्रह मानवाकार भी होता है और नचाकर भी। वर्षा का देवता होने के अतिरिक्त नाग देवता को धन-धान्य का रक्षक और प्रदाता भी माना जाता है।

भरमौर क्षेत्र के कुगती गांव के प्रमुख नाग देवता हैं—'केलंग। कथा प्रचलित है कि केलंग नाग लाहुल से एक मेंढ़े के सिंगों से लिपट कर वह कुगती आए थे। उन दिनों कुगती गांव में भेढ़ बकरियों में एक महामारी फैल गई थी। केलंग नाग देवता की कृपा से महामारी तो खत्म हो गई। और साथ ही पूजा प्रतिष्ठा हो गई। केलंगकी कुगती में नाग देवता के पूजारी लाल रंग का टोप और कमरबन्द पहनते हैं। स्थान स्थान से लोग अपनी मनौतियां और मन्नते मांगने यहां आते हैं। और जब तक यहां रहते हैं लाल रंग का टोप और लाल रंग का ही कमरबन्द पहने रहते हैं।

केलंग नाग जैसे लाहुल से आए, उसी प्रकार बासक (बासुकि) नाग के बारे में कथा प्रचलित है कि उन्हें जम्मु-काश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र से चम्बा लाया गया था। बासक नाग देवता के साथ ही साथ बासक नाग और नागनी भी भद्रवाह से ही चम्बा में लाए गए थे। डिग्धु नाग पांगी से चम्बा आए या लाए गए।

इन्दरू नाग का नाम देवराज इन्द्र से जोड़ा जाता है कहते हैं मण्डी के सुकेत क्षेत्र से

एक राजा इन्दरू नाग की प्रतिमा अपने साथ कांगड़ा लाए, कांगड़ा से वही राणा चम्बा के सामरा क्षेत्र में आ बसे। नाग देवता के साथ सात पुजारी भी राणा के साथ आए और तब से सामरा में इन्दरू नाम की पूजा प्रतिष्ठा होने लगी। केवल मात्र सामरा में ही इन्दरू नाग का पूजन नहीं होता बल्कि उरेई, सुनाओ, लामू कुवारसी, थोंकला और सुलाखर गाँवों में भी इन्दरू नाग के मन्दिर स्थापित हैं।

भरमौर के सेरी गांव के पास नागूहण नाग देवता के बारे में एक कथा प्रचलित है। मन्दिर के सामने ही पानी के दो चश्में बहते हैं। कथा इन्हीं चश्मों के बारे में कही जाती है। पहले सेरी गांव में पानी नहीं था, पास के दूसरे गांव सिरड़ी में पानी था। सिरड़ी गांव की देवी थी एक नागिन। नागूहण नाग देवता ने सिरड़ी की ग्राम देवी नागिन से विवाह कर लिया। विवाह के पश्चात् नागिन देवी अपने साथ पानी का चश्मा भी लेती आई। तभी से नागूहण में पानी के दो चश्में बहते हैं। नाग दम्पति की कृपा से।

सारे क्षेत्र में बड़े २ विचित्र नामों वाले नाग देवताओ के मन्दिर हैं। जैसे की चुराह क्षेत्र के तीसा में 'बलोदर' 'मलूण' सुरोही, दाखा, काल्, बढ़लौना क्षेत्र में जमण जमोड़ी छालामार खण्डवाल नाग, या अन्य कई गांवों में, माहल, थिग, थैइनंग, मण्डोलू, पेजू बलोदर, टौणु, ढलूड्डू खल्लर, दिक्षु, सूरजू, राह, जम्मू-द्रुवदु बुद्ध, आदि नागदेवताओं के नाम हमें बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करते हैं पांगी की जोखिम कर वादियों में जर्राहियूं, कुढ़हियूं, दैंत नाग, बेसर नाम आदि नाम, हमें अनुसन्धान की चुनौती देते हैं।

पर्यटन क्षेत्र खजियार के खज्जी नाग देवता, जमुहार के जम्मुनाग गुन्दयाल क्षेत्र के करंगड़ नांग, भटियात क्षेत्र के 'बिणतरू' नाग देवता आदि।

क्यों हैं इतने अजींब-ओ-गरीब नाम-नाग देवताओं के ? क्या यह सब जातियां भी जो कभी हिमालय क्षेत्र में बस गई थी : कौन करेगा इस बात की खोजबीन शायद पढ़ने वालों में से कोई जरूर होगा।

●

दी माल,
शिमला-१

"कांगड़ा का ऐतिहासिक शैव-तीर्थ : त्रिलोकपुर"

—डॉ० युगल किशोर

नगाधिराज हिमालय के आंचल में अवस्थित हिमाचल उपत्यका मनोरम, सुखद और अप्रतिम प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त है। इस परम पुनीत वसुन्धरा के पग-पग पर स्थित देव स्थल यहां के जनमानस की अटूट निष्ठा एवं अडिग धार्मिक विश्वास के परिचायक हैं तथा प्रेरणा-स्रोत भी। यहां के व्यापक धर्मिक परिप्रेक्ष्य ने यहां की जीवन दर्शन की समग्रता और पारम्परिक रचना-प्रक्रिया को प्रभावित किया है। हिमाचल को देवभूमि अथवा शिवभूमि की उत्कृष्ट संज्ञा से अभिहित किया गया है, सत्यतः प्रमाणित व समीचीन है।

देवस्थलों की महिमा व ऐतिहासिक-पौराणिक महत्व :

हिमाचल में अनगिनत विभिन्न शैलियों के मन्दिर हैं जो क्लिन्न-क्लांत, श्रान्त-विदग्ध हृदय को चिदानन्द शान्ति एवं अदम्य धैर्य प्रदान करने हैं। कई लब्ध प्रतिष्ठ मंदिर हजारों वर्ष पुराने हैं जो अपने पीछे ऐतिहासिक तथ्यों व लोकमानस में परिव्याप्त किवदंतियों व लोकाख्यानों की अपेक्षा रखते हैं। ये मंदिर अथवा तीर्थस्थल ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पौराणिक महत्ता प्रतिपादित करते हैं। असंख्य श्रद्धालु इन देवस्थलों में पधार कर अपनी निष्ठा व भक्ति प्रकट करके अपने आप को धन्य समझते हैं।

शिव : लोकमंगलकारी लोक देवता :

जहां अन्य देवी-देवताओं के मन्दिर निजी वैशिष्ट्य स्थापित करते हैं वहां शैव शिल्प के अनुपम-अद्वितीय तीर्थ-स्थल अपनी गरिमा एवं लोक-प्रतिष्ठित निष्ठा को अक्षुण्ण रखते हैं। शिव वास्तविक लोक देवता के रूप में मान्य हैं। शिव सृष्टि का पालक, संहारक और कारण है। शिव के विराट् स्वरूप ने साहित्य व कला को समान रूप से प्रभावित-प्रेरित किया है। यदि वैद्यनाथ (बैजनाथ) का शिव मन्दिर चिर-पुरातनता व ऐतिहासिक-पौराणिक सन्दर्भों का प्रत्यक्ष रूप हैं तो चिरोपेक्षित व अर्चित त्रिलोकपुर का शैव-तीर्थ भी अपनी गरिमा को प्रदर्शित करता है।

स्थान व अवस्थिति :

आलोच्य शिव मन्दिर पठानकोट—बैजनाथ-मनाली राजमार्ग पर पठानकोट से लगभग २८ मील और बैजनाथ से लगभग ५५ मील दूर मार्ग में 'त्रिलोकपुर' नामक स्थान पर स्थित है। सड़क के बिल्कुल समीप एक गुफा में यह मंदिर पूर्ववत् एक आराध्य व दर्शनीय पावन धार्मिक स्थान है।

इसके साथ ही एक छोटा सा नाला बहता है और नीचे नदी बहती है। निर्मल जल का चश्मा अबाध गति से निरन्तर प्रवाहित रहता है। अनगिनत शिव-भक्त यहां आकर शिव के प्रति अपनी भक्ति व आस्था व्यक्त करते हैं। बाहर से आने वाले कई पर्यटक इस मन्दिर की कलात्मकता, शिल्प और पुरातनता की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं।

लोकाख्यान के रूप में ऐतिहासिक सन्दर्भ :

किसी भी स्थान की निजी महत्ता और वैशिष्ट्य होता है। प्रत्येक के पीछे कोई न कोई इतिहास छिपा होता है। यह इतिहास चाहे पौराणिक सन्दर्भ में हो अथवा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अथवा किंवदंतियों या लोकाख्यान को लेकर लिखा गया हो। इसी से उस स्थान विशेष की पूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है और अगामी शोध की दिशा खुलती है।

लोकाख्यान के अनुसार आज से हजारों वर्ष पूर्व आशुतोष, औढर दानी शंकर भगवान इस गुफा में आकर तपोरत हो गए। उनके चारों ओर शेषनाग तथा विषैले विषधर लटके हुए थे, जिनके मुंह से प्रतिक्षण दुग्ध–धारा प्रसृत होती थी। शंकर जी के अखंड आसन के दोनों ओर से बड़े स्वर्ण के स्तम्भ थे। एक दिन एक गडरिया अपनी भेड़ बकरियां चराता हुआ विश्राम करने हेतु अनायास उसी गुफा में भेड़ों सहित घुस गया। ज्योंहि उसकी लोलुप दृष्टि उन कनक जड़ित स्तंभो पर पड़ी वह उनका लोभ संवरण नहीं कर सका। उसने तत्काल कुल्हाड़ी उठाई और सोना काटना आरम्भ कर दिया। किंचित् समयोपरान्त जब शिव भगवान की आंख खुली तो उन्होंने क्रोधित मुद्रा से उस गडरिए को निहारा जो उनकी वक्र-दृष्टि से तत्क्षण भेड़-बकरियों सहित पत्थर हो गया। भगवान शंकर ने सोचा यदि ये स्वर्ण-खाचित-स्तंभ ऐसे ही रहने दिए तो आगामी पीढ़ी लालच में आकर इनको अवश्य चुरा कर ले जाएगी। अतः इसी विचारणा के साथ उन्होंने अपनी दिव्य शक्ति से वे सोने के स्तम्भ पत्थर के कर दिए तथा वे सारे शेषनाग, सांप आदि भी पाषाणमय कर दिए। आज भी वहां सांपों की आकृति दृष्टिगोचर होती है तथा सांपों के दांत विल्कुल तदवत् दिखाई देते हैं। अतः वहां दूध के स्थान पर पानी टपकता रहता है। गडरिया व उसकी भेड़ बकरियां भी छोटे-२ पत्थरों के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसी से लोक प्रचलित किंवदन्ती की प्रमाणिकता व असंदिग्धता का परिचय मिलता है। अन्ततः शंकर भगवान अपने उक्त स्थान पर एक पाषाणमय पंचमुखी शिवमूर्ति बनाकर वहीं समाविस्थ हो गये। उस घटना के कई शताब्दियों के पश्चात् आज लगभग १५० वर्ष पूर्व जब पठानकोट बैजनाथ सड़क का निर्माण हुआ तो वहीं उक्त गुफा के पास खड्ड पर पुल बनाया गया। वह पुल तीन बार बना परन्तु आश्चर्य कि तीनों बार बह गया। अन्त में जब एक अन्य ठेकेदार ने उस पुल के निर्माण का ठेका लिया तो उसने सर्वप्रथम उस शिवगुफा में जाकर शिव की पंचमुखी मूर्ति के समक्ष नतमस्तक हो प्रार्थना की तथा पुल के पूर्ण निर्बाध निर्माण पर मन्दिर का जीर्णोद्वार करने का संकल्प लिया। आशुतोष शंकर भगवान की अपार अनुकम्पा से पुल बिना किसी व्यवधान के बनकर पूरा तो हो गया और फिर उस ठेकेदार ने अपने संकल्प के अनुरूप उस जीर्ण-शीर्ण भग्नप्राय मन्दिर का पुनरुद्धार कर उसकी काया पलट दी। पत्थर एवं चुने से उसे पक्का

बनाया गया। उस दिन से लेकर लोगों के दिल में उस शिव-मंदिर के प्रति श्रद्धा व निष्ठा जागृत हो गई। और आज यह मन्दिर लोगों के लिए एक पर्यटन-धार्मिक स्थल बन गया है। हजारों की संख्या में श्रद्धालु भक्त यहां आकर अपने अराध्य देव की पूजा-अर्चना करके कृत-कृत्य होते हैं। तथा यहां के प्राकृतिक सौन्दर्य से मन्त्र-मुग्ध होकर इसके प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते है।

इस प्रकार यह उपेक्षित शिवमंदिर आज एक शक्तिप्राप्त धार्मिक पर्यटन स्थल के रूप में उभर कर नई चेतना, नए जीवन व श्रद्धा-निष्ठा का प्रतीक है।

●

गांव व पत्रालय धनोटू वाया रैत
जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

कादम्बरी और कुलूत देश की राजकुमारी--पत्रलेखा

— डॉ गिरिधर 'योगेश्वर'

हिमाचल प्रदेश का प्रसिद्ध प्राकृतिक सौंदर्यस्थल (जो भारत के 'स्विट्जरलैंड' से किसी तरह कम नहीं) कुल्लू ही महाभारत एवं पौराणिक काल का 'कुलूत देश' रहा था—इस विषय में अनेक विद्वान एक मत हैं। कुल्लू निवासी प्रसिद्ध विद्वान् श्री लाल चन्द जी प्रार्थी ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'कुलूत देश की कहानी' में सप्रमाण हमारे इस कथन की पर्याप्त पुष्टि की है। प्राचीन संस्कृत साहित्यकारों को हिमाचल-सुषमा ने कितना प्रभावित एवं आकर्षित किया था—उनकी कृतियां इसका कोई कम उदाहरण नहीं। 'कादम्बरी' एवं 'हर्ष चरित' के अमर रचयिता महाकवि बाण तो हिमाचल को पूर्ण समर्पित हुए प्रतीत होते हैं। 'कादम्बरी' का अधिक भाग हिमाचल के किसी अज्ञात स्थल 'हेमकूट' इत्यादि पर ही घटित होता है तथा इसकी कादम्बरी, महाश्वेता, पत्रलेखा इत्यादि नायिकाएं—उपनायिकाएं हिमाचल की माटी की ही सौंदर्य-स्फुटित कोमल-कलिकाएं हैं—इस लेखक की ऐसी दृढ़ मान्यता है। पत्रलेखा, जो कादम्बरी के नायक चन्द्रापीड की सखी, विश्वास पात्री, प्रतिच्छाया सम ताम्बूल करङ्क वाहिनी (पान-पेटी उठाने वाली) अंतरंग सहायिका थी—हिमाचल के कुलूत (कुल्लू) देश की ही राजकुमारी रही थी। बाण को कुल्लू-घाटी की कन्याओं की सुकोमलता, सुन्दरता, सरलता, तरलता, मानवीयता, सर्वांगीणता, सज्जनता, प्रखर सर्वतल-स्पर्शी प्रतिभा-संपन्नता इत्यादि का कितना सर्वव्यापक यथार्थबोध एवं विशाल अनुभव था—'पत्रलेखा' का चरित्र-चित्रण इसका एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

महाकवि बाण 'कादम्बरी' के केवल 'पूर्वभाग' को ही रच पाये थे कि उनका देहान्त हो गया। इस अमर कथा का 'उत्तरार्द्ध उनके सुपुत्र भूषण भट्ट ने पूरा किया। पूर्वार्द्ध में पांच-छः स्थलों पर तथा उत्तरार्द्ध में दो तीन स्थलों पर पत्रलेखा का प्रसंग आया है। सर्वत्र इसका चरित्र सर्वोच्च एवं निष्कलंक रहा है। उत्तरार्द्ध की परिसमाप्ति पर रचनाकार को पत्रलेखा की महत्ता निम्न प्रकार से स्वीकार करनी पड़ी—

प्रसंगवश एक दिन कादम्बरी चन्द्रापीड के रूप में अवतरित अपने चन्द्रावतार प्रियतम से प्रश्न कर बैठी, 'चन्द्रदेव ! शेष कथानक तो सब ठीक ठाक घट गया, परन्तु पत्रलेखा का क्या बना ? यह उलझन अभी भी सुलझी नहीं है।' इस पर चन्द्रापीड ने प्रत्युत्तर दिया, 'शोभने ! शाप के कारण मेरे भूपर अवतरित होने के कारण रोहिणी को अतीव कष्ट हुआ, अतः मेरी सेवा करने के लिए वह ही पत्रलेखा बनी थी। अब वह अपने लोक चली गयी है।'

कादम्बरी की कथा में पत्रलेखा का प्रवेश रचनाकार ने अत्यन्त नाटकीय ढंग से चन्द्रापीड

के युवराज पद पर अभिषिक्त होने के काल पर किया है। '......और अगले दिन उसने (चन्द्रापीड ने) अन्तःपुर के मुखिया 'कैलाश' नामक कंचुकी को एक भोली, आकर्षक कन्या द्वारा अनुगम्यमान देखा। वह कन्या अभी यौवन के प्रथम काल में थी। महल में वास करने के कारण उसमें यद्यपि थोड़ी धृष्टता आ गयी थी तो भीवह विनम्र थी। इन्द्रगोप (वीर बहूटी) नामक लाल कीड़े जैसे रेशमी पर्दे में होने के कारण वह प्रातःकालीन धूप से ढकी पूर्व-दिशा-सम प्रतिभासित हो रही थी। अपने सौंदर्य की कांतिधारा से वह अमृत की नदी की बाढ़ जैसे उस भवन को भरती रही थी। वह यों प्रतिभासित हो रही थी मानो कि राहु-ग्रह के ग्रास बनने के भय से चन्द्रबिम्ब को त्याग कर पृथ्वी पर उतर आयी चांदनी हो, मानो मानवी रूप में राजमहल की गृहरक्षिका देवी हो। मणि-निर्मित नूपुरों से सुसज्जित, अतः झणझणाते चरण कमलों से वह कुड़-कुड़ाते कलहंसों से घिरी हुई कमल-पुष्प-युक्त कमलिनी जैसी लग रही थी। उसने अपने कटि-प्रदेश पर अत्यन्त महंगी स्वर्ण मेखला बांधी हुई थी। उसके उरोज उभर तो आये थे पर बहुत अधिक नहीं। अपनी लम्बी-पतली भुज-लताओं को धीरे-धीरे इधर-उधर हिलाने के कारण प्रकम्पित नख किरणों के व्याज से वह मानों अपने तरल सौंदर्य को अनेक धाराओं में बहा रही थी। अनेक हारों से सुशोभित शोभा वाली वह रहमानो क्षीर सागर से अभी-अभी निकाले हुए मुख वाली लक्ष्मी ही थी। अधिक पान चबाने के कारण उसका अधरोष्ठ कुछ काला पड़ गया था। वह विकसित श्वेत कमल जैसे नेत्रों वाली तथा सम (ऊंची-नीची नहीं), गोल तथा उन्नत नासिका वाली थी। कपोलों पर मणिमय कुंडलों पर खुदी मकराकृतियों से प्रसृत प्रकाश-कारण वह कर्णाभूषणालंकृत चेहरे वाली प्रतीत हो रही थी।

पिछले दिन बना होने के कारण चन्दन-लेप का उसके विशाल मस्तक पर बनाया गया 'तिलक चिन्ह' धूसर (भूरे) रंग का हो गया था। समस्त आभूषण प्रायः मोतियों से निर्मित थे। उसने अंगरागों (बिलेपनों) का प्रयोग किया था; वन्यलता- सरीखा उसका कोमल शरीर था। वह (चलते हुए पृथ्वी पर) खूब जमाकर पैर रखती थी। उसकी कमर वेदी के आकारकी (अर्थात पतली) थी। वह सुवर्ण–कुण्डलों से शोभित थी।

चन्द्रापीड के निकट पहुंच कर कंचुकी ने पृथ्वी पर अपना दांया हाथ टेककर निवेदन किया 'राजकुमार, महारानी विलासवती का यह संदेश है—इयं खलु कन्याका महाराजेन पूर्वं कुलूतराज-धानीमवजित्य कुलूतेश्वर दुहिता पत्रलेखाभिधाना बालिका सती बन्दीजनेन सहानीयान्तःपुर परिचा-रिकमध्यनुपनीता · · · ·'—कुलूत (कुल्लू) देश के राजा की कन्या इस पत्रलेखा नामक कन्या को, इसकी बाल्यवस्था में ही, अन्य कैदियों के साथ, महाराज पहले कुलूत (कुल्लू) देश की राजधानी को जीत कर अपन साथ लाये थे और अन्तः पुर की परिचारिकाओं के मध्य रख दिया। इसे अनाथ एवं राजकुमारी जानकर मेरा इसके साथ अतीव स्नेह हो गया और मैंने इसे अपनी बेटी की तरह प्यार किया और पाला है। अब यह थोड़ी बड़ी हो गई है। अतः मैंने इसको तुम्हारी पान-पेटी उठाने वाली बनने योग्य समझकर तुम्हारे पास भेजा है। आयुष्मान्, यह कोई साधारण सेविका नही है। इसे बालिका समझकर प्यार से रखना। अपनी स्वाभाविक मनोवृत्ति की भांति इसको भी उद्दण्ड कार्यों से रोकना। शिष्य की भांति इस पर दृष्टि रखना। मित्र की भांति इसे अपनी सभी

विश्वासनीय बातों में अंतरंग बनाना। चिरकाल तक साथ रहने के कारण बढ़े हुए स्नेह से इसमें मेरा हृदय अपनी पुत्री के समान लगा है। अपनी विनम्रता एवं कार्यकुशलता से यह निश्चय ही कतिपय दिनों में आपको प्रसन्न कर लेगी। मैं बहुत देर से बढ़ी हुई इसके प्रति अपनी प्रगाढ़ प्रबल प्रेम–भावना के कारण से ही तुम्हें संदेश भेज रहा हूं। कुमार इसके चरित्र से परिचित नहीं हैं। तुम अवश्य ऐसा प्रयत्न करना जिससे चिरकाल तक यह तुम्हारी योग्य सेविका बनी रहे।' यह संदेश देकर कैलाश चुप हो गया। पत्रलेखा द्वारा प्रतिष्ठापूर्ण प्रणाम किये जाने पर चन्द्रापीठ ने उसे देर तक एकटक दृष्टि से देखकर कहा 'ऐसा ही होगा', और कंचुकी को लौटा दिया।

तब से पत्रलेखा ने दिन में अथवा रात में, चाहे राजकुमार सोता हो बैठा हो, खड़ा हो या चल रहा हो अथवा राजभवन में मिलने गया हो—छाया की भांति उसका पल्लु नहीं छोड़ा-प्रथम भेंट से ही चन्द्रापीड की भी उसके प्रति प्रीति प्रतिक्षण बढ़ती ही गयी। उसने अपनी सभी विश्वसनीय बातों में उसको अपने हृदय से भिन्न नहीं समझा।'

इस कथानक के अनन्तर पत्रलेखा के साथ राजकुमार का दिग्विजय के लिए प्रस्थान वर्णित है। फिर एक किन्नर–जोड़ी (संभवतः किन्नौर वासी) का पीछा करते हुए 'इंद्रायुध' नामक घोड़े के साथ अच्छोद सरोवर पर महाश्वेता; तथा उसी के माध्यम से हेमकूट पर्वत पर गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी से मिलन वर्णित है। वहां से पुनः लौटकर राजकुमार पत्र लेखा इत्यादि को कादम्बरी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करता है तथा कादम्बरी के सेवक 'केयूरक' द्वारा कादम्बरी की मदन-व्यथा जानकर पत्रलेखा को साथ लेकर पुनः हेमकूट पर जाता है। काम-से संतप्त एवं कृश पड़ी कादम्बरी से केयूरक कहता है 'राजकुमारी! राजकुमार चन्द्रापीड की प्रसन्नता की आधारभूमि यह पत्रलेखा महाराज की पानपेटी उठाने वाली है।'

पत्रलेखा के अनिंद्य सौंदर्य एवं सारल्य से प्रभावित हुई कादम्बरी सोचने लगी 'अहो, मानुषीषु पक्षपातः प्रजापतेः—आश्चर्य है, विधाता का मानुषी (इस स्त्री) के प्रति कितना अधिक पक्षपात है?' पत्रलेखा ने उसे आदर पूर्वक नमस्कार किया और तब कादम्बरी ने ,आओ, आओ कह कर चकित-दृष्टि से परिजनों द्वारा अवलोकित पत्रलेखा को अपने समीप ही बैठा लिया। प्रथम दर्शन से लेकर ही प्रीति का अनुभव करती हुई कादम्बरी ने उसे अपने कोमल हाथ से स्नेह पूर्वक छूआ।

पत्रलेखा ने अपने सद्व्यवहार से कादम्बरी को इतना मोह लिया था कि चंद्रापीड के अपने सैन्य में लौटते समय 'केयूरक' ने उसे सूचित किया, "वस्तुतः राजकुमारी कादम्बरी प्रथम-भेंट से ही उत्पन्न प्रगाढ़ प्रीति के कारण पत्रलेखा को कुछ काल अभी अपने पास रखना चाहती है। वह पीछे चली जायगी।" चन्द्रापीड इस सन्देश को सुनकर कह उठा, "केयूरक, धन्या स्पृहणीया च पत्रलेखा यामवममनुबध्नाति दुर्लभो देवी प्रसादः। प्रवेश्यताम्।"—केयूरक! वह पत्रलेखा सचमुच धन्य है और ईर्ष्या का स्थान है, जिस पर राजकुमारी ऐसी दुर्लभ कृपा कर रही है! इसलिये इसको ले जाओ।" इतना कह कर चद्रापीड अपनी सेना में आ गया।

इसी बीच चन्द्रापीड को पिता का संदेश पाकर अपनी नगरी (उज्जयिनी) लौट आना पड़ा। उधर चन्द्रापीड की प्रेम पीड़ा से व्यथित और प्राण त्याग के लिए उत्सुक कादम्बरी को पत्रलेखा ने ही अपनी सूझबूझ से बचाये रखा तथा राजकुमार और कादम्बरी के बीच एक कड़ी का काम किया। कादम्बरी का पत्रलेखा से कितना स्नेह था, उसके शब्दों में 'पत्रलेखे, वल्लभतया तस्मिन्स्थाने न तातोनाम्बा न महाश्वेता न मदलेखा न जीवितम् यत्र मे भवती दर्शनात्प्रभृति प्रियासि। न जाने, केनापि कारणेनापस्ति नसकलसखी जनं त्वयि विश्वसिति मे हृदयम्।'—'पत्रलेखा, मुझे अत्यन्त प्रिय होने के कारण मैं तुझे जिस ऊंचे स्थान पर रखती हूं, उस स्थान पर न पिता को, न महाश्वेता को, न मदलेखा को और न जीवन को ही रखती हूं। जब से मैंने तुझको देखा है, तभी से तुम मुझ पर छा गई हो। नहीं मालूम किस कारण, मेरा हृदय सब सखियों को बलात् निष्कासित कर तुझ पर ही विश्वास करता है?' इसी तरह चन्द्रापीड को भी वह पत्रलेखा अत्यन्त प्रिय थी।

कुलूत देश की राजकुमारी पत्रलेखा के बहाने से महाकवि बाण ने कुल्लू की कन्याओं के ही विविध गुणों का पिष्टपेषण किया है। पत्रलेखा का चरित्र संपूर्ण कादम्बरी कथा में अद्वितीय है। जिस तरह हिमाचल के प्रति बाण का पक्षपात रहा है, उससे तो यदि सरस्वती के इस वरद् पुत्र को इसी भूमि का पांव कहा जाए तो शायद कुछ भी गलत न हो।

●

कीर्ति भवन गुलेर
जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

मासती गांथो (महासती गांथो)

—रूप कुमार शर्मा

सिरमौर क्षेत्र के निवासियों में अधिकतर मैदानों से आये आर्य वंशज व कुछ मुस्लिमों के भय से भाग कर आये हुए राजपूत वंशज हैं। उनके साथ ही उन लोगों के रीति–रिवाज व परम्पराएं भी यहां चली आईं। जिसका एक प्रमाण सती समाधियां जीर्ण अवस्था में अब भी विद्यमान हैं। ददाहू का प्राचीन नाम सती बाग था। रैणुका के गांवों के लोग अब भी ददाहू को आने को सती के पास जाना कहते हैं। यहाँ किसी अज्ञात सती की समाधि अब भी विद्यमान है। संगड़ाह के पास डूंगी में भी ऐसे ही सती समाधि के अवशेष हैं। वहां का नाम भी 'सतीया' हैं। पहाड़ी राजाओं व गुरु गोविन्द के मध्य हुए भंगाणी के युद्ध में काम आये चार पर्वतीय राजाओं की रानियां उनके साथ सती हुईं थीं, जिनकी यादगार आज भी सती समाधियों के रूप में विद्यमान हैं। ऐसी ही कई समाधियों का पाया जाना इस क्षेत्र में इस प्रथा के प्रचलन का प्रमाण है। दुर्भाग्यवश हमें उनमें से बहुत सी सतियों के ठौर-ठिकाने व जीवन गाथाओं का ज्ञान नहीं है। इन समाधियों में वे सतियां चिरनिद्रा में सोई हैं जिन्हें प्रतीक्षा है ऐसे अन्वेषण कर्ताओं की जो उनके जीवन पर प्रकाश डाल कर उन्हें अमर कर सकें जिससे उनकी जीवन गाथाएं अन्धकार से प्रकाश लाकर जगमगा सकें और आने वाली पीढ़ियों को भी उनकी कुर्बानी का पता चलता रहे वरन् एक समय ऐसा आयेगा जब इनके अवशेष भी न रहेंगे और समय के साथ ये विस्मृति के गर्भ में हमेशा के लिए समा जायेंगी।

कुछ सतियों की गाथाएं सिरमौरी भाषा में गाई जाती हैं जिनमें गांथो, सुरमी और बिधि प्रसिद्ध हैं। इनमें से गांथो की गाथा प्रस्तुत है। यदि पाठकों ने पसन्द किया तो शेष गाथाएं भी सोमसी के माध्यम से आप लोगों तक पहुंचाने का प्रयास किया जायेगा। इस क्षेत्र में महासती का शब्द बिगड़ कर 'मासती' बन गया है। यहां पर जब कोई स्त्री सती होना चाहती थी तो उसे रोकने के लिए लोग आग में जलने का भय दिखाते थे। उन सतियों की दुखदायी पीड़ाओं का वर्णन करके जो आग की लपटों की पीड़ा को न सह सकने के कारण चिता से भाग खड़ी हुई थी। इस पर भी अगर कोई स्त्री अपने सती होने के निर्णय पर अडिग रहे तो उसको सती होने से न रोक कर गाजे-बाजे के साथ उसका प्रबन्ध कर लिया जाता था यहां तक कि कई बार सती होने के समय राजा सिरमौर, राणा जुब्बल भी स्वयं उस स्थान पर आकर सती होने जा रही स्त्री को आशीर्वाद देते थे।

इस क्षेत्र में बहु-विवाह प्रथा प्रचलित रही है अतः यदि कोई स्त्री दूसरा विवाह करती और

दूसरे विवाह वाले पति के साथ सती होती थी तो पूर्व पति से अपनी मुक्ति की मांग सती होने से पूर्व अवश्य करती थी। उसके बाद ही उसके लिए चिता सजाई जाती और घी का दीपक जला दिया जाता था। कहते हैं उसकी लौ में सती और उसका मृत पति दोनों के अक्स उस लौ में दिखाई देने पर ही सती को चिता पर बैठने की आज्ञा दी जाती थी। उसके मायके व ससुराल के लोग उसको अन्तिम विदाई देने आते और सती होने से पूर्व उसको दुल्हन की तरह सजाकर चिता पर बैठा कर मृत पति का सिर उसकी गोद में रख कर उसको भी चिता पर लिटा देते। खूब गाजे-बाजे बजाये जाते। सती होने से पूर्व सती की गाथा का निर्माण कर लिया जाता था और सती होने वाली स्त्री को सुना दिया जाता था। इसके पश्चात् वह सभी उपस्थित विभिन्न समुदायों के जन-समूह से विदा लेकर हाथ जोड़कर आंखें मृत पति के चेहरे पर स्थिर करके भगवान से अगले जन्म के लिए दुआ करती पुनर्मिलन की। और इसके साथ ही चिता में घी डाल कर आग लगा दी जाती।

प्रस्तुत 'मासती' गांथो की है जो थोमलो की रहने वाली थी। उसकी प्रेम-पींगें दुजिया के पुत्र लालू की ओर तीव्र गति से बढ़ीं और प्रेम की बलि पर चढ़ने के लिए विवादग्रस्त विवाह कर डाला। किन्तु यह संसार दो प्रेमियों के प्यार को फूटी आंखों नहीं देख पाता। प्रेम सभी करना चाहते हैं, मगर दूसरे के प्रेम के विरोधी और खून के प्यासों की कमी नहीं है। अभी उनके प्रेम के दिनों का शुभारम्भ हुआ ही था कि इस घृणा और प्रेम की शत्रु भावना का शिकार नव-युवक प्रेमा लालू भी इसका निशाना बन गया। बिशु के मेले में उसकी हत्या कर दी गई और एक और युवक प्रेम की बलि वेदी पर शहीद हो गया। किन्तु यह प्रेम विरोधी जग, उसके जीते जी (लालू का) घोर विरोधी शत्रु व मृत्यु का कारण बना और उसकी मृत्यु के बाद गांथो उसकी पत्नी सती हो गई तो उनकी यादगार में सती समाधि बनाई और उनको मरणोपरान्त गीतों में अमर कर दिया। लोग अब भी उनकी दर्द भरी दास्ता न सुन कर आहें भरते हैं। दुनियां जिसको जीवन में जीने नहीं देती, मर जाने पर उसको भुला भी नहीं पाती है।

मासती गांथो

लालु गाणे बोलिया भाइए भाई,
बाबा गाणा धोजिया, मोती शिखो खे शाई ।

खेच पाची रोए जों रे,
उबे रूए जो लूंदे जाई।
बांतो थोई पुंडा बोलिया,
बाबा धोजिया खे लाई ।।

शुद्र तेरी ओकलो के पिए खाई, रोटी देणो शीघड़ी पोकाई,
लालु लागे बोलिया, शीगे उबे खेड़े खे जाई ।

बातो लाओ बोलिया
पुंडी लोई लालु खे शुणाई
उदा बोइशे धोइगे
शुट देणो ढुमोख री खाई

शुट मारो बोलिया, बातो थोई लालुवे लाई
मारो आउणो दादीआ, बिशु खे जाई ।

बातो थोई बोलिया ए लाई,
शुट्ठ तेरी ओकलो केमिए खाई
खेच पाची रुए जौं रे,
जौं थोए आमे लुंदे लाई ॥

का लागी तांदी लालुआ, बिशु जाणो री बाई,
गांव शे थोओ गाड़िओं झालो मुंजे लोआ टुकरा खाई

विगानी जाएला जातरे,
जीउंदा बोटे ने घोरे आई ।
जीउंदे रोवे चेंई-थिए सांसे,
बिशु रुआ आले सालो आई ।

बिशु मिलो खड़ली रो होरी पीउली पागे,
जेशो बिशु मिलो ओशों रो, एशो मिलदो न आगे ।

बोलिया थोआ लालुवे,
बातो लोई भरमाई ।
वेसो उछाउंदिये दुहने लागे,
भाइठे घोरे खे आई ॥

बाबा थोए दुजिया शाणे लाई, ओकलो थोई केमिए खाई,
खेचो छड़े जौं रे, दुइने रोए घोरे खे आई ।

लालु बातों लाओं दुजिया खे,
दादा लागो बिशू री बाई।
विशू रा कोरणा सोर जाम,
तेई लगे आमे धोरे खे आई ॥

बातो थोई पुंडी बुड़ी माई खे लाई,
जाणो मां जातरी खे, रोटी देणी भेशणी पोकाई।

साजे बाणने चिलटु,
साजो शालनो धोओ ।
बेगानी जाणो जासरो,
तिन्दा मुखणा अपणा जीओ ॥

लालु लागे बेलियां मीटे मांजिओ खे जाई,
सात शौ री चादरो, उबी थोई लोइए रे गूजे दी पाई।

वीणा लोआ कोपरी,
गूजे उदा पाई ।
कुरबान बांबे कापड़े,
बाईड आंगणो खे आई ॥

बाबा लोआ दुजिया मोती शीखो खे साई,
रोला कोरे ने घोला शीघे जाऐ घोरे खे आई।

शीगे लोगो भोइले,
जुबड़ो दे जाई ।
बांटनो थोई गांथो हैरणी लाई,
गांथो रोई पुंडी बिशू दी आई

बांठनो रोई गांथो तेरे सांसो दो रिटाई,
सात शो री चादरे, पुंडी थोई गांथो रे भुडो दी पांई ।

शीगी लागी भोइली धीरे खे आई,
हाथो दी कोरो दाचरी, खोराड़ी चली।
फुली को रो फुलदी डालिटी दाई,
सेरी शी गांथो माइके आई ॥

कुरो कोरो कावातो, चिठी बोई लालू खे लिखाई।
तेरी रोई दीड़े हाओं माइके खे आई

तु'ए जाणों लालु,
आंडो मिलारु आई ।
धादा कोरे खीतो रा,
तेरे जाणा शाउरे आई ॥

चीठी लिखो गांथो, रुगे रा थोआ हिणिकु लाई
शीघा लागा मोहिला आंडा पाउणा आई

बाबा लेई दुजियाए,
मोती शिखो लाई ।
सुने लोई सीरफी,
पागे, गूजे बोनाई ॥

वीजे जाणी गुड़णिए छिड़को पाणी
ऐवे लालु वे पाया जाजड़ा वाणी

भुजा न जामो
होदा न मुनो रा जाणा
जेशा लिखा भागो दा
तेशणा भुगतिओ जाणा

आखी रोई गांथो री आधी आशुए भोरी
लालु रोआ पापिआ, आधी उमरी मोरी

लालु रे कानों दी
सुने दी नोती
मेरे जाणो शोउरिओ
जोली लालु सीते सोती

शोउरा लाला दुजिया, मोतो शीखो
आगले मिले चेंई तु'ए जन्मो ऐजी मेरी शीशो

●

एम० आई० ज००—१६ आवास बस्ती नाहन
जिला सिरमौर (हि० प्र०)

गुरु गोरखनाथ की विचारधारा

का

हिन्दी मध्यकालीन साहित्य पर प्रभाव

—वेद प्रकाश अग्नि

तत्त्व-चिन्तन या विचार-दर्शन किसी भी वृहत्तर समाज की युगयुगीन चेष्टाओं, प्रयासों तथा संकल्पात्मक अनुभूतियों, विधेय तथा निषेधात्मक व्यापारों का मूल प्रेरणास्रोत हुआ करता है। बिना विचार-दर्शन के कोई भी समाज रचना अधूरी और किसी भी जाति का जीवन छूंछा तथा अपूर्ण ही नहीं हुआ करता अपितु उसे वह सुदृढ़ आधारशिला उपलब्ध ही नहीं होती जिस पर किसी सभ्यता और संस्कृति के पृथक् अस्तित्व का भव्य प्रासाद निर्मित हुआ करता है।

किन्तु विचार-दर्शन मात्र कल्पनात्मक तथा बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। एतद्बिषयक चित्त-शक्ति या चैतन्य के अभिव्यञ्जन अथवा निरावरणित या विस्फारित होने का साधन केवल क्रियात्मक साधना है। क्रियात्मक साधना द्वारा उद्भूत विचारदर्शन ही सत्याश्रित, परिपक्व तथा सर्वकालीन हो सकता है। अतएव ऐसे विचार-दर्शन की जो अनुमान पर अवलम्बित न होकर क्रिया तथा सत्य के प्रत्यक्ष-दर्शन पर निर्भर हो उसकी उपादेयता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

सत्य-निष्ठा तथा सत्यान्वेषण की भावना या कामना ही किसी दर्शन विशेष के मूल प्रेरणा-बिन्दु हैं और उसके विकास का हेतु अपने इर्द-गिर्द में उपलब्ध विरूपता तथा जीवन की नाना विसंगतियां हैं, जिनकी प्रतिक्रिया हृदय को आन्दोलित तथा मस्तिष्क को उत्तेजित कर सत्यानुभूति के लियेसन्नद्ध कर देती हैं तथा एक बार सत्य का अनुभव होने पर मनुष्य उस अनुभूति को वृहत्तर मानव समाज के कल्याण में नियोजित कर जहां विराट् आत्मीयता के आनन्द का आस्वादन एवं अनुभव करता है, वहां विरूपता एवं विसंगतियों को दूर कर जीवन में सामरस्य एवं आनन्द के संचार का भी व्यापक प्रयास करता है।

फिर सत्यनिष्ठ द्रष्टा विचारक की चिन्तनशक्ति गम्भीर और सूक्ष्म पकड़ वाली ही नहीं होती अपितु उसमें भौतिक तथा पारमार्थिक दोनों ही जीवन की वृहत्तर इकाइयों को संजोकर एक सुव्य-वस्थित, सुचिंतित तथा सर्वांगीण दृष्टिबिन्दु प्रदान कर अपने युग की समस्याओं के समाधान के साधन जुटाने की अद्भुत क्षमता भी रहती है। उसका सत्य-दर्शन हर साधारण व्यक्ति की भांति

एकांगी न होकर सर्वांगीण तथा सर्वस्व का स्पर्श करने वाला होता है। यही महान् और विराट् व्यक्तित्व की अद्वितीय महिमा है, गरिमा है।

ऐसे ही प्रखर व्यक्तित्व तथा ठोस क्रियात्मक विचार-दर्शन को लेकर गुरु गोरक्षनाथ मध्यकाल के सन्धियुग में भारतीय धर्मसाधना के रंगमंच पर अवतीर्ण हुए। अपनी प्रबल सत्य-जिज्ञासा, एकतानतापूर्ण उत्कट साधना तथा अनन्य तपश्चर्या से कुन्दन बन कर उन्होंने अपने युग की समस्याओं के लिए जिस व्यापक समाधान को प्रस्तुत किया, उसने निश्चय ही भारतीय समाज का बड़ा भारी उपकार किया है तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की भारतीय समाज, साधना एवं संस्कृति पर अमिट छाप पड़ी है।

इस महामना महात्मा के विचार-दर्शन तथा साधना-पद्धति का अध्ययन-मनन स्वनामधन्य विद्वानों द्वारा कुछ काल से होता आता है। इस क्षेत्र में डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, म. म. पं० गोपीनाथ जी कविराज, आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी तथा डा० श्रीमती कल्याणी मल्लिक के प्रयास विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं।

गोरक्षनाथ के विचार-दर्शन तथा साधना-पद्धति को हिन्दी के विद्वानों को अवगत कराने का श्रेय आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी को है। उनके मार्गदर्शन के कारण ही विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और परिणामस्वरूप इस विषय में डा० चन्दोला, डा० रांगेय राघव, डा० कोमलसिंह सोलंकी तथा डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय द्वारा नाथ-पंथ के अध्ययन और अनुसन्धान का प्रयास हो सका है। डा० चन्दोला ने नाथपंथीय हिन्दी कवियों का अध्ययन तो प्रस्तुत किया है, किन्तु सन्तों के साथ उनके सम्बन्ध आदि का निरूपण नहीं किया है। डा० सोलंकी का अध्ययन लोकतत्व की नाथपंथ तथा सन्तकाव्य में उपलब्धि की दृष्टि से हुआ है। डा० रांगेय राघव का अध्ययन मध्यकालीन समाज और संस्कृति के सन्दर्भ में गोरक्षनाथ के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन है।

डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने नाथ तथा सन्त साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर नाथ-पंथीय विचार-दर्शन और साधना को शास्त्रीय आधार प्रदान करने का विद्वत्तापूर्ण प्रयास किया हैं। किन्तु इनमें से किसी के अध्ययन का लक्ष्य गोरक्षनाथ या नाथपंथ की विचारधारा के हिन्दी निर्गुण-साहित्य पर पड़े प्रभाव का निर्देशन या अनुसन्धान नहीं रहा है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इसी उपेक्षित कार्यक्षेत्र का अनुसन्धान एवं अध्ययन किया गया है।

इस दृष्टि से यह अनुसन्धान आवश्यक एवं महत्वपूर्ण भी हो जाता है, क्योंकि मध्यकालीन धर्म, साधना, समाज और संस्कृति की चेतना को हृदयंगम करने, उसके पूर्वापर सम्बन्ध-सूत्रों के सम्यक् निर्धारण, परवर्ती सन्त-साहित्य के सन्तुलित एवं व्यवस्थित परीक्षण तथा तद्युगीन भारतीय समाज और संस्कृति के चिन्तन-बिन्दु, मान्यताओं और प्रेरणाओं के सम्यक् अवबोध के लिये

गोरक्षनाथ की विचारधारा के सन्दर्भ में मध्ययुगीन सन्त-साहित्य पर पड़े उसके प्रभाव का अद्यावधि उपेक्षित अनुसन्धान स्वतः एक आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति का प्रयास प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध है।

इस शोध-प्रबन्ध में स्व० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित गोरखबानी को ही अध्ययन के लिये प्रामाणिक रूप में ग्रहण कर गोरक्षनाथ के जीवन-दर्शन तथा साधना-पद्धति का निरूपण किया गया है। पुस्तक का अवगाहन कर उसमें निहित सम्बन्ध-सूत्रों तथा तत्त्व-चिन्तन को हृदयंगम करने और कराने का प्रयास हुआ है। किसी प्रकार के शास्त्रीय भार से गोरक्षनाथ विचारधारा को सम्वलित करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। किन्तु गोरखबानी में प्रतिपादित गोरक्षनाथ की विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए जहां-जहां भी नाथपंथ के शास्त्रीय ग्रन्थों की सहायता की आवश्यकता हुई है उनकी उपेक्षा नहीं की गई है।

प्रस्तुत अध्ययन को पांच खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में नाथपंथ के उद्भव तथा विकास के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री को वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित कर नाथपंथीय इतिहास-लेखन की समस्या पर विचार किया गया है एवं बताया गया है कि नाथयोगी बौद्ध नहीं, मूलतः शैव थे जिन पर शाक्त-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त पृष्ठभूमि के रूप में नाथपंथ से सम्बद्ध शैव, शाक्त परम्पराओं एवं संप्रदायों के विकास का परिचय दे दिया है।

द्वितीय खंड गोरक्षनाथी साहित्य से संबंधित है। इसमें संस्कृत, हिन्दी, बंगला आदि भाषाओं में गोरक्षनाथ की विचारधारा एवं साधना-पद्धति से संबद्ध, हिंदी में अन्यत्र दुर्लभ, साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। इस दृष्टि से इस खण्ड में तथ्य-संकलन एवं प्रतिपादन की अपेक्षित मौलिकता मिलेगी।

तृतीय खण्ड को तीन उपखण्डों में विभक्त कर गोरक्षनाथ से संबंधित समस्त परम्पराओं, किंवदंतियों आदि का प्रथम उपखण्ड में एक ही स्थल पर सर्वेक्षण तथा व्यवस्था कर दी गई है तथा उनसे उपलब्ध मान्य तथ्यों पर भी विचार कर लिया गया है। दूसरे उपखण्ड में गोरक्षनाथ के अस्तित्व काल के सम्बन्ध में नाना मतों तथा स्रोतों का अध्ययन करने के अनन्तर ९वीं तथा १०वीं शताब्दी के मध्यभाग को ही उनका अस्तित्वकाल माना गया है। तृतीय उपखण्ड में नाना सूत्रों से उपलब्ध गोरक्षनाथ सम्बन्धी सामग्री का उपयोग करते हुए उनके आधार पर गोरक्षनाथ के वैविध्यपूर्ण विराट् व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। व्यक्तित्व सम्बन्धी व्यापक अध्ययन का यह प्रयास इससे पहले कदाचित हुआ है। व्यक्तित्व का अध्ययन व्यक्ति के कृतित्व को हृदयंगम करने में सहायक होता है, इस दृष्टि से इस प्रयास की महत्ता एवं उपयोगिता स्वतः सिद्ध है।

चतुर्थ खण्ड गोरक्षनाथ की विचारधारा से सम्बद्ध है। इसको पांच उपखण्डो में बांटा

। पहले उपखण्ड में गोरक्षनाथ के विचार-दर्शन तथा साधना पद्धति को प्रभावित करने वाले विभिन्न शैव-शाक्त तथा मत्स्येन्द्रनाथी आदि दर्शनों का दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में परिचय प्राप्त कर लिया गया है। दूसरे उपखण्ड तत्व-चिन्तन में गोरखबानी में प्राप्त गोरक्षनाथ के विचार-दर्शन का अध्ययन हुआ है। इसके अनंतर उनके तत्व-चिन्तन एवं साधना के वैशिष्ट्य पर दृष्टिपात करने के अनंतर आचारपक्ष के तीसरे उपखण्ड में योगभूमि के रूप में गोरक्षनाथ के सदाचारमूलक नियमों या मूल्यों का अध्ययन कर लिया गया है। चौथे साधना उपखण्ड में गोरक्षनाथ की साधना-पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। प्रयास यह रहा है कि इन विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित सामग्री का विवेचन एक ही स्थल पर हो सके। पांचवां उपखण्ड गोरक्षनाथ की काव्य और कला पर आधारित है। इसमें अनेक काव्यत्व, भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण, प्रतीकात्मकता एवं विपर्ययमूलक अभिव्यंजना-पद्धति की चर्चा की गई है। इस प्रकार इस खण्ड में गोरखबानी के सन्दर्भ में गोरक्षनाथ के विचार-दर्शन और साधना के सर्वांगीन अध्ययन का प्रयत्न हुआ है।

पंचम खण्ड की चौथे खण्ड की भांति ही, प्रभाव सीमा, तत्व-चिन्तन, आचारपक्ष, संत-साधना तथा भाषा शैली नामक पांच उपखण्डों में विभाजित किया गया है। इनमें क्रमशः सन्त साहित्य में प्राप्त उन्हीं तथ्यों का अध्ययन किया गया है जो गोरक्षनाथ की विचारधारा साधना पद्धति, सदाचारमूलक दृष्टिकोण एवं अभिव्यञ्जना पद्धति से प्रभावित हुए परिलक्षित होते हैं। इस खण्ड के प्रारम्भ में ही कबीर आदि पर गोरक्षनाथ के प्रभाव की सीमाओं और कारणों पर विचार कर लिया गया है तथा उन आक्षेपों का परिहार भी कर दिया गया है जिनसे प्रभाव सन्देहास्पद प्रतीत होता हो।

इस प्रकार इस शोध प्रबन्ध में गोरक्षनाथ की विचारधारा के सन्दर्भ में कबीर आदि सन्तों के साहित्य पर पड़े उनके प्रभाव का सम्यक् अध्ययन सम्पन्न हुआ है।

इस शोध-प्रबन्ध के लेखन के प्रेरणा स्रोत परम श्रद्धास्पद पूज्य गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी रहे हैं। उनका वरदहस्त और मार्गदर्शन यदि उपलब्ध न होता तो गोरक्षनाथ के गोरखधंधे से बाहर निकलना कदाचित सम्भव ही न होता। मेरे वाराणसी काल में जिस स्नेह और प्रेरणा से उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया, अपने निवास स्थान पर ठहराकर शांत और एकांत वातावरण में मनन-चिन्तन और लेखन का अवसर प्रदान किया। उसके बिना यह काम पूरा हो पाना कठिन था। उनकी मीठी डांट-डपट से कि 'कब तक अंग्रेजी से ही काम चलाते रहोगे' की प्रेरणा से ही मुझे बंगाल भाषा सीखने और पढ़ने का उत्साह एवं बल प्राप्त हुआ तथा मूल भाषा में बंगला ग्रन्थों को देखने का अवसर उपलब्ध हो सका अतः मैं आचार्यवर को प्रणतिपूर्वक प्रणाम करता हूं।

इनके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के सुप्रसिद्ध विद्वान् म० म० पंडित गोपीनाथ जी

सोमसी

कविराज के सत्परामर्शों एवं मार्ग दर्शन का सौभाग्य भी मुझे वाराणसी रहते हुए प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर मैं श्रद्धाभावभरित हृदय से उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। इन महानुभावों के अतिरिक्त जिन अनेकानेक विद्वानों के व्यक्तिगत परामर्श तथा ग्रन्थों के अध्ययन-मनन द्वारा इस यज्ञ की पूर्ति हुई है, उन सब के प्रति मैं हृदय कृतज्ञ हूं।

●

राजकीय महाविद्यालय,
धर्मशाला

सिरमौरी गीतों में कारूण्य एवं आक्रोश

—प्रेमलाल गौतम आचार्य

हिमाचल प्रदेश प्रकृति नायिका का अ ीव रमणीय रङ्गस्थल रहा है। इसके पूर्व से उत्तर तक प्राचीर की तरह शैवालिकादि गगन चुम्बी शिखर श्रेणियां सदैव हिममंडित, नयना भिराम एवं आकर्षक हैं। एक ओर प्रकृति-प्रमदा की क्रीड़ा-स्थली जम्मु-काश्मीर है तो दूसरी ओर शस्य श्यामल पांवटा प्रदेश को चूमता उत्तर प्रदेश का क्षेत्र। नीलाभामय झील गोविन्द सागर इस प्रकृति-योषिता के कोमल पद प्रक्षालनार्थ सदैव सेवा-संरत है। इस हिम प्रदेश के बीचों-बीच बहने वाली व्यास, सतलुज, रावी, गिरिगंगा, मीनस आदि नदियां देवभूमि हिमाचल के अधिकांश भागों को सींच कर उर्वरा बना रही है। उत्तर प्रदेश, पंजाब हरियाणा इस देवाङ्गना के अङ्गरक्षकों की तरह हमेशा जागरूक एवं कटिबद्ध है।

इस भारत वसुधा का गौरवधाम हिमाचल प्रदेश ऋषि-मुनि, साधु सन्तों, पीरों की तपो भूमि रही है। इसीपुनीत परिवेश में देवगिरा का सस्वर पाठ हुआ है। यहीं महर्षि मनु ने 'मनुस्मृति' लिखी और इसी धर्मभूमि पर महर्षि बाल्मीकि और व्यास महाराज ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से आदिकाव्यों का शुभारम्भ किया। यहां की प्रकृतिक सौंदर्य गरिमा स्तुत्य है—देवदार, बान, चीड़, बरास आदि के सघन वन सांय-सांय के हृदयहारी नगमें गाकर पथिकों, पर्यटको, एवं सुहृदय-गण को सदैव सुखप्रद एवं प्रेरणा स्रोत रहे हैं। कलकल-छल छल की मधुर कलोलें करती नदियों नाले अविरल प्रवाहित हो रहे हैं। प्रकृति के उपासक कवि कुल कलाधर महाकवि कालिदास ने 'कुमार-सम्भव' नामक महाकाव्य में हिमालय की सुषमा का वर्णन बहुत ही सुन्दर शब्दों में चित्रित किया है।

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज,
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितपृथिव्यामिव मानदण्ड ॥
कपोलकण्डूकरिभिर्विनेंतु विघट्टितानां सरलद्रुमाणाम् ।
यत्रस्रु तक्षीरतयाप्रसूते सानूनिगन्धः सुरभि करोति ॥

चूड़धार शिखर के दामन में बसा सिरमौर वास्तव में हिमाचल प्रदेश का सिरमौर है। इस क्षेत्र के लोग जहां परिश्रम प्रिय हैं उसी तरह गीत-संगीत में भी विशेष रुचि रखने हैं। कहीं कोइ घटना घटित हुई कि अगले ही दिन गीत के रूप में प्रस्तुत हो जाती है और मेलों, उत्सवों, त्यौहारों, इतर कार्यक्रमों या किसी भी खुशी के अवसरों पर नाटी के रूप में मुखरित हो सर्वव्यापक हो जाती है।

प्राचीन अनेक गाथाएं हमारी संस्कृति के द्योतक हैं, जिन्हें विविध समारोहों पर गाया जाता है। सिरमौर के गीतों में श्रृंगार रस में भरी नाटियां, हास्य-विनोद भरे टप्पे, झूरियां हृदय-विदारक करूण रस से युक्त नाटियां तथा आक्रोश भरे गीत हैं।

मूक शिखर पर किसी गायक के मुंह से या किसी उत्सव के अवसर पर जब करूण रस की अविरल धारा नाटी के रूप में प्रस्फुटित होती है तो श्रोताओं के सामने अतीत की तत्त त घटनाएं स्पष्ट सामने आ जाती है। किस श्रोता का हृदय अकस्मात् नहीं पसीज उठता जब कर्ण विवरों में अधोलिखित पंक्तियों प्रवेश करती है।

पार बोलो ढाकोदे रिड़आ तेरे,
ढाटू बोलो तूनी रे डाले
डाले बोलो हेड़िया शुक्रमेरा
ढ़ाटू बोलो तूनी रे डाले

इस कारूणिक नाटी से एक सास की दो बहुओं की गाथा सम्पृक्त है। दोनों बहुएं सगी बहिनें थी। सास ने छलकपट से एक बहु जिसका छः मास का बच्चा था उसे दूसरी बहु को इधर-उधर की बातों से भड़का कर धक्का देने की पूर्व योजना बनाई। बेचारी मुग्धा को अपनी बहिन पर ऐसी शंका कैसी। दोनों बहिनें सास के साथ घास को गई थी। काल की विकराल द्रष्टाएं फैलाए ढाक प्रतीक्षा संरत था। बेसमझ बहिन सास के कुटिल स्वभाव को न समझ पाई और निरीहा बहिन का धक्का दे दिया। ढाटू (सिर पर बांधने वाला कपड़ा) तूनी के वृक्ष पर टंगा रहा ढाक खून से भीग गया। गायक पूछता है —

कुगे बोलो बैरिये तू खोड़ो के भेजी
दिता बोलो कुणिए धाका
धाका बोलो हेड़िया शुक्रमेटा
दिता बोलो... ...

शुक्रमेट नामक शिकारी उसी जंगल में आखेटार्थ गया था। उसने अपनी आंखों से यह घटना घटित देखी। गायक पूछता है कि किस दुश्मन ने तुझे घास को भेजा और किसने तुझे धक्का दिया। गीत की अगली पंक्तियों—

सकी बोलो सासुए खोड़ों के भेजो
दिता बोलो बेबीए धाका
धाका बौलो हेड़िया शुक्रमेटा
दिता बोलो ... ...

सगी सास ने घास को भेजा और सगी बहिन ने धक्का दिया। आगे बोल कितने दर्दनायक है—

हाडो बोलो मासो रे रिड़कू लागे,
बगी बोलो खूना री नोदी ।
नोदी बोलो हेड़िया शुक्रमेटा

हड्डियां और मांस टुकड़े-२ हो गिर गये और खून की नदी बह गई। अग्रिम बोल कितने हृदयकम्पा देने वाले हैं—

छः बोलो मीने रा छोरू छुटा,
अठारा बोलो सालो री आपी
आपी बोलो...... ।

छः महीने का बच्चा अब मां की ममता से वञ्चित हो गया है और स्वयं की अवस्था अठारह वर्ष की थी। अन्त में पुन: गायक उसकी स्थिति का वर्णन करता हुआ कहता है—

दाची बोलो रसो तेरी अधमो छूटी,
ढाटू बोलो बोलो तूनी रे डाले
डालें बोलो...... ।

दराती और रसी तो ढांक के बीच ही फंस गई और बेचारी का ढाटू तूनी के वृक्ष में ही टंगा रह गया।

जब सस्वर साज बाजों के साथ नाटी को गाया जाता है तो पाषाण हृदय भी क्षणिक स्वयं को भूल बैठता है—

बस दुर्घटना में मृत्यु प्राप्त परिचालक का स्थानीय नाटी में अतीव कारुणिक वर्णन किया गया है—

कांशे लागो बोलो बीजली लोहे दा जंगो,
जांगो छेड़ुआ नरायणुआ लोहे दा जंगो ।
नवीं छटी बोलो नौकरी नोवां शादी रा रंगो
रंगो छेछुआ नरायणुआ नोवां शादी रा रंगों

जैसे कांसे पर बिजली कड़कती है और लोहे को जंग लग जाता है। उसी तरह नई नौकरी पर विद्युत कड़क गई है और जहाँ शादी सोने पर दाम्पत्य हास्य विलास का काल था उसमें काल का विकराल जंग लग गया है। अगले बोल भी द्रष्टव्य है :

उबे जाणी बोलो गांवां दा बासो कुक्टा डाब्बू
मां री तेरी कोमला रो मोहिया बापू
बापू छेडुआ नरायणुआ...... ।

स्वाभाविक ही है माता पिता का विलाप। यह उन्हीं के दग्ध हृदय से पूछिए जिनका नवयुवक पुत्र गुजरा हो।

इसी प्रसंग में एक यह नाटी भी है जिसमें रामचन्द्र जो स्वयं दिल्ली कोई व्यवसाय करता था। घर दो बेटे, बहु और पुत्री शीला रहते थे। शीला के साथ भाभी का इसलिए द्वेष था कि यह सौंदर्य की अद्वितीय प्रतिमा थी। अनेकश: शीला अपने पिता से शिकायत भी कर बैठी थी कि मेरे से भाभी की गालियां नहीं सुनी जाती। द्वेष में जली भूनी भाभी ने शीला के अनुपम सौंदर्य को एक दिन सदा के लिए मिटा दिया:

बाजी करो बाजगों बाजो गोए रा बाणा रे,
भोले हुई ले बाठणो शिलया उव्वे इंदरो खे जाणा रे
एकी हाथो दे आरसू शिलया दूजे हाथो दे कांगी रे
दू तो तेरे भाइड़ो शिलया विद्या भाभीए झांगी रे।

दो भाईयों के होते हुए विद्या भाभी ने कैसे छल से सुन्दरी शीला को मार डाला। नाटी सुनते रोयें खड़े हो जाते हैं। अकस्मात् इन घटनाओं को सुनते अधोलिखित पद्य स्मरण आता है:

नृपस्व चित कृपणस्य वित्तं स्वभाव खलु दुर्जन जनानाम्
स्त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्य:।

सिरमौरी प्राचीन गाथाओं में अजबा और झांकों की गाथा भी जुड़ी है। अजबा और दिलमी अपने-२ इलाके के नायक थे। दिलमी के लोग अजबा के गांव डिब्बर वालों की सम्पत्ति को क्षति पहुंचाने के फलस्वरूप देवी के अधिकृत दयार चीड़ के जंगलों से वृक्ष काट रहे थे। उन दिनों शाठा-पाशा (पाण्डव की सन्तान-कौरव की सन्तान) की परम्परा थी। दोनों दलों में लड़ाई छिड़ गई। दिलमी ने छुपकर निशाना साधकर विष से युक्त तीर अजबा की टांग में गाड़ दिया जिससे अजबा धराशायी हो छटपटाने लगा। नायक घायल हो जाने पर लड़ाई बन्द कर दी जाती थी। अब सब लोग नायक को कन्धे पर उठाकर बिना ढोल बजाए वापिस आ गये। झांखो को जब ज्ञात हुआ कि उसका पतिदेव घायल हो गया है तो वह रोती बिलखती कह रही है:

झांखो भोरो आखोटी दे साई आ तबाखू दे शोटा बे
सातू नी पिन्दा सतानटो पोरा तबाखू दे शोटा बे।

झांखो अश्रू बहाते अपने घायल पति को तबाखू पीने और सातू खाने को कह रही है। टांग से चलते लहू को देख झांखों के गोरे गालों पर नयनों से सावन भादो की झड़ियां बह रही थी। अजबा इन शब्दों के द्वारा अपनी पत्नी को सान्त्वना देता है:

रोए न बाठगे झाखोए देए कांचणो न खोए बे।
खोड़ी री चुटो कुम्बरो एना खे न रोए बे ॥

झांखो तू पगली है। मुझे तो मामूली सा कांटा चुभा है। कंचनमयी आभापूर्ण देह को शोकानल में मत झुलसा। सुनते हैं अन्त में अजबा के साथ झांखों भी सती हो गई थी। इस तरह की अनेकों गीत नाटियां तत्कालीन घटनाओं की स्मृतियां आज भी हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

करुणादायी गीतों के साथ सिरमौरी गीतों में आक्रोश की भावना के भी स्पष्ट दर्शन हैं। हर्सों किसी सुन्दरी का असुन्दर व्यक्ति के साथ विवाह हो जाने से गायक गाता है :

कुणे पापीए शला मेरी हर्सों
गेंहू मिंजो मडवा कुणे पापीए

प्रिय हर्सों किस पापी ने तुझ गेहूं जैसी में काले रंग का मंडवा (कोदा) मिला दिया। कितनी तड़प है इन बोलों में। हर्सों स्वयं बेजोड़ आदमी से दुःखी है। आगे गाते हैं :

काजी शोको रा पाला मेरी हर्सों
पीजंरे रा चकोरा ! काजी शोकोरा

अरी हर्सों ! पिजंरे में चकोर को किस शोक का पाल रखा है। आगे की पंक्तियों में स्पष्ट कर देता है :

आपी थी तू बाठिणो तेरा मालक
काला मेरी हर्सों आपी थी तू बाठिणो

सिरमौर जनपद का राजगढ़ यथा नाम तथा स्थान है। इसी के साथ का इलाका पझौता क्षेत्र से प्रसिद्ध है। पझौता का मियां मोहरसिंह एक प्रसिद्ध समृद्ध व्यक्ति रहा है। जवानी और धन दौलत के नशे में मदान्ध हो सुनते हैं कालिमाता के मन्दिर में नास्तिकता का पक्ष ले कुछ बुरा भला कहा और मंदिर के कुछ झण्डे फाड डाले। गायक स्वयं कहता है :

ते पेची ध्वजं ते थी थिया भूतो रे मालदारा मोहरसिंह
हड़ेची री नाली दे तेरी डोई ली जातो रे मालदारा मोहरसिंह

सुना जाता है उसी दिन ढाक से गिर जाने पर इनका देहान्त हो गया। गायक के स्वर आज भी उनके क्रिया कलापों को ताजा रखे हुए हैं।

गीत, नाटियां, झूरियां, गजलें हमारी संस्कृति एवं सभ्यता को सुखद विरासत है। प्राचीन अर्वाचीन गीत नाटियों तात्कालीन अतीत को हमारे समक्ष नहीं रखती प्रत्युत मनोरंजन के साथ 'रामादिवत् प्रर्वातिव्यं न रावणादिवत्' की अनूठी शिक्षा भी प्रदान करती हैं।

●

राजकीय माध्यमिक पाठशाला हाब्बन
तैं० राजगढ़ जिला सिरमौर

सौभाग्य एवं पुण्य का प्रतीक— **तुलसी विवाह**

—शशिकान्त शास्त्री

भारत की प्राचीन सभ्यता में तुलसी का बड़ा महत्त्व माना जाता था। भगवान विष्णु की पूजा में तुलसी एक प्रधान उपकरण है। तुलसी के बिना भगवान विष्णु की पूजा नहीं हो सकती। भगवान के चरणामृत में और दर्शकों को बांटे जाने वाले प्रशाद में भी तुलसी की प्रधानता रहती है। बहुत से धार्मिक सज्जन कार्तिक शुक्ल एकादशी को अर्थात् देव प्रबोधिनी एकादशी को बड़ी धूमधाम से तुलसी के विवाह का आयोजन करते हैं। वे कन्या के विवाह की तरह ही सब सामग्री जुटाकर तुलसी का भगवान विष्णु की शालियाम की प्रतिमा के साथ विवाह रचाया करते हैं। भारतीय संस्कृति में वर्षा के चार महीनों विवाह आदि मंगल कृत्य बन्द हो जाते हैं। देव प्रबोधनी एकादशी अर्थात् शुक्ल कार्तिक एकादशी इन विवाहादि कृत्यों का पुनः आरम्भ होता है। इसलिए प्रारम्भ में ही पहले तुलसी और शालिग्राम का विवाह कर देना मंगलमय समझा जाता है। इस से उस वर्ष अपने घर में अनेक प्रकार के मंगलमय होते हैं, ऐसा भारतीयों का विश्वास हैं। भारत में स्त्रियों और पुरुषों के नामों में भी तुलसी शब्द का आदर बहुत देखा जाता है। बहुत से व्यक्तियों के नाम तुलसीराम, तुलसीदास, तुलसी प्रसाद, तुलसीकान्त आदि पाये जाते हैं और स्त्रियों में भी तुलसी नाम की स्त्रियां बहुत मिलेंगी। तुलसी सौभाग्यवती नारियों का कामना तरु हैं। युगों से सुहाग की कामना करने वाली भारतीय नारियां तुलसी की पूजा करती चली आईं हैं।

तुलसी के विषय में कहा जाता है कि :—

नामोच्चारे कृते तस्याः प्रोणात्य सुरदर्पहा।
पापानि विलयं यान्ति पुण्यं भवति चाक्षयम्॥
सा कथं तुलसी लोकैः पूज्यते वन्द्यते न हि।
दर्शनादेव यस्यास्तु दानं कोटि गवां भवेत्॥

अर्थात् – तुलसी का नाम लेने से असुरों का दर्प दलन करने वाले भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्यों के पाप नष्ट हो जाते हैं और उन्हें अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। जिसके दर्शन मात्र से करोड़ों गो-दानों का फल प्राप्त होता है। उस तुलसी की पूजा और वन्दना लोग क्यों न करें।

इस प्रकार धार्मिक कृत्यों में प्रधानता प्राप्त करने के अतिरिक्त स्वास्थ्य के विषय में भी

तुलसी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ग्रामीण से लेकर शहर का शिक्षित वर्ग भी अनेक बीमारियों में तुलसी को याद करता है।

शास्त्रकारों ने कहा है कि जिस घर में तुलसी का वन है। वह पार तीर्थ के समान पवित्र है। उस घर में यमदूत नहीं आते। (यहां यमदूतों का अर्थ जहरीले कीड़े सर्प, बिच्छू आदि, रोग कीटाणु बिमारियों से है। जैसे :—

तुलसी गन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः।
दशो दिशः पुण्याशु भूत गुग्मात् चुर्तुविधान॥

अर्थात्—तुलसी की गन्धयुक्त हवा जहां भी जाती है वहां की दशों-दिशायें शीघ्र ही पवित्र हो जाती है और आकाश पृथ्वी, वायु, जल आदि चारों तत्व उससे शुद्ध हो जाते हैं। तुलसी में इस प्रकार के अलौकिक गुण किस कारण से हैं, इसके अन्वेषण तुलसी की उत्पत्ति की एक पौराणिक कथा बहुत सहायता देती है।

उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार से है कि समुद्र से एक दैत्य उत्पन्न हुआ, जो पैदा होते ही बहुत जोर से शब्द करने लगा। उससे सारे लोग कम्पित हो गए। समय पाकर वृन्दा नामक स्त्री से उसका विवाह हो गया। उस दैत्य ने देवताओं के अधिकार छीन और स्वयं सबका राजा बन बैठा। उसके भय से देवता लोग भगवान रुद्र की शरण में गये और उन्होंने देवताओं की रक्षा के लिये जालन्धर नामक दैत्य पर चढ़ाई की। बहुत समय तक युद्ध होने पर भी जालन्धर मारा नहीं गया तब विचार से विदित हुआ कि इसकी स्त्री वृन्दा पूर्ण पतिव्रता है। उसका पातिव्रत्य धर्म जब तक न टूटे, तब तक यह दैत्य नहीं मर सकता। अन्ततः भगवान विष्णु ने बड़ी युक्ति से से जालन्धर के घर में प्रवेश किया और वृन्दा को अपने धर्म से डिगाया तब जालन्धर मारा गया और वृन्दा भी उसके साथ सती हो गई उसकी भस्म से ही तुलसी उत्पन्न हुई। इसी कारण तुलसी विष्णु को बहुत प्रिय है। यह कथा पूर्ण रूप से वैज्ञानिक है। वैदिक और पौराणिक परिभाषा में प्रकाश में रहने वाले तत्वों को देवता और अन्धकार में रहने वाले तत्वों को असुर या दैत्य कहा जाता है। सूर्य के उपस्थान में मन्त्र पढ़ा जाता है— **"चित्रं देवानामुदगादनीकम्"**। अर्थात् देवताओं की सेना अब ऊपर आई। इससे सिद्ध है कि सूर्य मण्डल में देवता पूर्ण रूप से व्याप्त हैं। सूर्य किरणों द्वारा वे अन्तरिक्ष और भूमि पर अपना प्रभाव जमाते हैं। सूर्य मण्डल में व्याप्त रहने वाले प्राण रूप देवता आदित्य नाम से कहे जाते हैं। आदित्य बारह हैं। उनमें एक आदित्य का नाम विष्णु भी है। सूर्य प्रकाश जब हट जाए या कम हो जाए तब आसुरों की प्रधानता हो जाती है। इसलिए रात्रि की "आसुरी" यह संज्ञा है, क्योंकि उस समय असुरों की प्रधानता रहती है।

यह भी पौराणिक कथाओं में प्रायः देखा जाता है। समुद्र का जल ही सूर्य की किरणों के उत्ताप से वाष्प रूप में परिणत होकर ऊपर उठता है और धीरे-धीरे घनीभूत होकर बादल बन

जाता है। यह सभी वैज्ञानिक मानते हैं। इसलिए जलन्धर नाम और उसकी उत्पत्ति से सिद्ध हो जाता है कि यह नाम बादल का है।

मेघ के अनेक स्तर जब एक दूसरे से मिलकर घनीभूत होते जाते हैं। जिसे मुहावरों में घटा बन जाना कहते हैं ; तब उन्हें वृन्दा ही कहा जाता है। कई विद्वानों के विचार से घटा बन जाने पर उसमें चमकने वाली बिजली वृन्दा है रूद्रवायु विशेष का नाम है। विष्णु भगवान जगत के पालक माने जाते हैं। इसलिये रोगों से रक्षा करने वस्तु से उनका घनिष्ट प्रेप होना युक्ति युक्त है। इस कथा से स्पष्ट हो जाता है; कि प्राचीन आर्यों ने तुलसी के गुणों का विश्लेषण कर उनके कारणों की खोज की थी। उनसे प्रभावित होकर आर्यों ने तुलसी की इतनी महिमा बढ़ायी थी। यहां तक कि भक्ति शास्त्रों में यहा तक माना जाता है, कि तुलसी जिन घरों में न हो, वे धार्मिक घर नहीं, उन्हें शमसान तुल्य समझना चाहिए। गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने लंका में भी विभीषण के घर में तुलसी के पौधे का होना लिखा है।

"नव तुलसी के वृन्द वहु, देखि हर्ष कपिराय"

भारत के प्रत्येक भाग में लगभग तुलसी के पौधे लगाये जाते हैं और तुलसी की पूजा की जाती है विशेषकर तुलसी विवाह के शुभ दिन पर इसकी विधिवत् पूजा की जाती है। ऐसी धार्मिक स्वास्थ्यप्रद, प्रत्यक्ष फलदायक वस्तु का अपनी संस्कृत के अनुसार भारतीयों को विशेष आदर करना चाहिए और अपने घरों में तुलसी का पौधा अवश्य लगाना चाहिए।

●

राजकीय माध्यमिक विद्यालय
हारसी वाया संधोल-१७६०९१
जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

"कांगड़ा का जनमानस एवं लोकदेवता"

—रमेश मस्ताना

विज्ञान की व्यापकता एवं क्षेत्र विस्तार से यद्यपि आज का जनजीवन अछूता नहीं बच पा रहा है, वह किसी न किसी रूप में उनेक जीवन को अवश्य प्रभावित कर रहा है। परन्तु फिर भी कांगड़ा घाटी का ग्राम्य जनजीवन कुछ एक दिशाओं में इस प्रभाव से वंचित माना जा सकता है। ग्राम्य जन-जीवन अपनी कुछ परम्पराओं, रीति-रिवाजों के कारण बड़ा विचित्र परन्तु स्वाभाविक सा लगता है। कांगड़ा घाटी के जनमानस के लिए यहां का प्रत्येक कंकर-पत्थर कोई देवी-देवता, प्रत्येक दिन एवं मौसम देवी-देवता का दिन या उनके आगमन का संकेत और मेले–त्योहार, व्याह-शादियां आदि पूजा की परम्पराओं से भरपूर माने जाते हैं। सर्वविदित ईश्वरीय शक्तियों की पूजा–अर्चना के अतिरिक्त कुछ अन्य लोक देवी–देवताओं को अपने विश्वास, ढंग एवं मान्यताओं से पूजते हैं और उनमें इतनी आस्था रखते हैं कि वह प्रत्येक मंगल–त्योहार या शुभ मूहर्त के समय उनकी पूजा करना नहीं भूलते हैं। प्रत्येक नई वस्तु को घर लाने से पहले या घर में लाकर चाहे वह नववधू के रूप में हो या नए अन्न के रूप में, इन लोक देवताओं की पूजा करना और उन्हेंभेट चढ़ाना यहां का जनमानस अपना पुनीत एवं प्रथम कर्तव्य समझते हैं।

इन लोक-देवताओं में कुछ शिष्ट ग्राम देवता होते हैं और कुछ अशिष्ट। परन्तु यह अशिष्ट देवता भी किसी सीमा तक शिष्ट ही माने जा सकते हैं। यदि इन अशिष्ट देवताओं की पूजा-अर्चना यदि उचित समय पर और समुचित ढंग से होती रहें तो वह पूजने वाले को कभी कष्ट नहीं देते हैं, यहां तक कि उसके घर एवं वस्तुओं की रखवाली भी करते हैं। परन्तु कई बार उन्हें मंत्र या जादू-टोनों के द्वारा दूसरों पर थोपने का जब प्रयास होता है, तब यह अवश्य उन्हें तंग करते हैं और हानि पहुंचाते हैं। उस समय इनसे बचने के लिये चेलों-जोगियों की शरण लेकर खेल पातर द्वारा उनसे पींछा छुड़ाना पड़ता है।

शिष्ट लोक देवताओं में ग्रामीण लोग–बाबा, कुलज, मूहरा, नारसिहं, परियां, गूगा धान आदि को मानते हैं। प्रत्येक दुख–कष्ट के समय को बात ही क्या यू भी यहाँ का प्रत्येक स्त्री-पुरूष इनकी शरण एवं छत्रछाया में रहना चाहता है। यहां तक कि प्रत्येक रोग का निदान भी इनके द्वार पर जाकर मनौती मानकर किया जाना है।

अशिष्ट लोक-देवताओं में बाबा भोगत, मामा-पहाड़िया, बाबा सीण्डू, जलबताल,

खेतरपाल, एंव कालीपीर आदि का अस्तित्व है। इन सब लोक-देवताओं को भूत-प्रेतों की योनि का स्वीकार किया गया है। इन लोक-देवताओं का सम्बन्ध अधिकतर कृषक वर्ग से है और इनके अतिरिक्त भी कृषक लोक कुछ अन्न देवताओं को भी जैसे---जख, खबाजा-पीर, डैंग एंव इन्द्रूनाग आदि की भी पूजा करते हैं.

बाबा :---

बाबा का मुख्य थड़ा दयोटसिद्ध जिला हमीरपुर में है। इन्हें बाबा बालक के नाम से भी जाना जाता है। इनकी मुख्य निशानी पत्थर पर दो पैरों के चिन्ह हैं, जिसे बटाड़े या पत्थर पर नक्काशी करने वाले हत्थोड़े-छिन्नी से कुरेद कर उकेरते हैं। घरों में इनकी स्थापना के लिये बाबा को सिन्दूर लगा कर एक पीले रंग के कपड़े की झोली में बाबा जी की स्थापना का सामान जैसे : सांकल, खड़ांऊ सिन्दूर, गेरी मिट्टी आदि सभी चीजें रखकर गूगल धूप आदि घुमा कर चेले द्वारा की जाती है। चेला 'खेलकर' बाबा जी के आने या न आने की, प्रसन्नता या अप्रसन्नता की सूचना देता है। प्रत्येक मंगलकार्य पर एवं नई फसल के आने पर सर्वप्रथम बाबा जी को मीठा रोट चड़ाया जाता है। विशेष कर शादी के समय सर्वप्रथम बाबा जी की पूजा गुढ़ चने, मीठी-रोटी के साथ की जाती है और इन पर पीले रंग के कपड़े का छत्र लगाया जाता है।

कई बार किसी परिवार की मनोकामना पूर्ण होने पर बाबा जी को 'भण्डारा' दिया जाता है। इसमें बकरे की बलि दी जातो है और सभी सगे सम्बन्धियों, भाई-बन्धुओं को बुलाकर खाना खिलाया जाता है। इसके पश्चात रात्रि के समय गाना–बजाना होता है। जिसमें भेंटें आदि गाई जाती। इसी दौरान कई बार कोई व्यक्ति 'खेलकर' बाबा जी की वाणी में भण्डारा देने वालों की बातों का उत्तर देता है, और भण्डारे की स्वीकृति या अस्वीकृति का संकेत देता है जिस घर के आंगन में बाबा जी की स्थापना हो वहां पर कोई भी भूत प्रेत आदि नहीं आ सकता है।

कुलज :

कुलज अलग-अलग कुलों या वंशो की अलग-अलग होती है। यह वास्तव में उस कुल की कोई सती स्त्री होती है, जिसकी पूजा पीढ़ी दर पीढ़ी की जाती है। कांगड़ा घाटी की प्रसिद्ध चैती गाथा 'रूल्हा दी कुल्ह' में घुघुरू वंश में रूकमणी को कुलज मानकर पूजा जाता है।

ब्याह शादियों, जनेऊ, जन्म दिनों आदि सभी मंगल-कार्यों पर कुलज की पूजा की जाती है, कई बार दूल्हे के कानों को बारात चढ़ने वाले दिन कुलज की मढ़ी या पिण्डियो के सामने बिठा कर छेदा जाता है और उसे कुलज का प्रसाद गुड़ खिलाया जाता है। लेकिन आजकल इस प्रथा का लगभग अन्त होता जा रहा है, और एक लोकोक्ति प्रसिद्ध हो रही है—न कन्न भनाणें न गुड़

खाणां' अर्थात न तो कान छिदवाने और न गुड़ खाना। 'शादी के अवसर पर कुलज को टिकड़ियों चने, गुड़ या कड़ाह आदि प्रशाद रूप में चढ़ाते है। कई जगह पर कुलज बकरे की बलि देने की प्रथा है, जिसमें से कुछ हिस्से की मालिक उस घर की ध्याणें (दूल्हे की बूए या बहनें ब्याही हुई) ही होती हैं।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष सावन के महीने की पूर्णिमा को जब थेईयां (इनका पता पुरोहित सम्वत की तिथों के अनुसार बताते हैं) लगती है तब भी की जाती है। इसमें नदी का एक विशेष प्रकार का चपटा पत्थर जो कि सफेद एवं हल्के लाल रंग के धब्बों का होता है, वह ग्यारह या तेरह लाए जाते हैं। इन्हें घर लाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उन पत्थरों में किसी में भी सफेद लीक न पड़ी हुई हो। यह लीक उस कुल्जज का जनेऊ माना जाता है जो कि अशुभ माना जाता है।

इन सब पत्थरों को आंगन के एक् कोने में मिट्टी की दीवार के सहारे खड़ा कर दिया जाता है। फिर कुल की सबसे बड़ी एवं वृद्धस्त्री जिसे 'जठेरी' कहा जाता है, आकर उन पर लाल रंग का कपड़ा डाल कर, डोरी से लिपटा कर, सिन्दूर का टीका लगाकर, टिकड़ियां, गुड़, गेंहू (ओरा), धान की बाली एवं आमले का पत्ता, जड़ समेत आदि भेंट कर धूप जलाकर पूजा करके परिवार के लिए मंगल कामनाएं करती हैं। कुलज की पूजा न करने पर यह कभी २ उस परिवार को दण्ड भी देती है, जिसे यहां की भाषा में 'खोट' कहा जाता है। इसमें अचानक ही व्यक्ति किसी रोग से पीड़ित हो जाता है, और दवाई-इलाज करने पर रोग बढ़ता ही जाता है, घटता नहीं। फिर चेले द्वारा मुट्ठा या बणे की डाली झुलाते हुए मन्त्र शक्ति से पता चलने पर, कुलज की पूजा करने पर वह व्यक्ति ठीक हो जाता है।

मुहरा :

यूं तो मूहरे कई प्रकार के होते हैं परन्तु घर के अन्दर पूजा जाने वाला मात्र औतर का मूहरा ही होता है। जो व्यक्ति बिना पुत्र-पूत्री के मर जाए उसकी याद में यह मूहरा बनाया जाता हैं। कच्चे पत्थर पर उस व्यक्ति की मूर्ति डकेरी जाती है और उसकी किरया के समय चार्ज द्वारा इसकी पूजा करके, सिन्दूर लगाकर, घर के अन्दर किसी ताक इत्यादि में रख दिया जाता है। घर के अन्दर रखने से पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह पता रहता है कि हमारी वंश परम्परा में कोई औबर रह कर मरा है।

नई फसल निकलने पर, प्रत्येक पूजन-त्योहार में इसे मीठी रोटी या उस फसल का ओरा आदि चढ़ाया जाता है। नई फसल का हिस्सा उन्हे इसलिए चढ़ाया जाता है, क्योंकि उस जमीन में उनका भी हिस्सा था, जिसे बाद की पीढ़िया खा रही होती हैं। लोकविश्वासानुसार रात को सोए हुए स्वप्न में जो सांप दिखाई पड़ते हैं और वह काट खाने को दौड़ते हैं, वह इसी औतर के मोहरे को न पूजने का कारण माना जाता है।

नारसिंह एवं परियां :

नारसिंह एवं परियां क्रमशः कृष्ण और गोपियों के रूप माने गए हैं। हिरण्यकश्यप को मारने के लिए कृष्ण ने जो नरसिंह अवतार ग्रहण किया था, वही बाद में नारसिंह के रूप में स्त्रियों का कुलदेवता बना। हिरण्यकश्यप ने बरदान लिया हुआ था कि न मुझे बाहर मारा जा सके, न अन्दर, न मुझे मनुष्य मार सके और न ही पशु, न मैं दिन को मरूं न रात को, तथा न ही किसी शस्त्र से मेरी मृत्यु हो। अतः हिरण्यकश्यप को मारने के लिए कृष्ण को नारसिंह अवतार धारण करना पड़ा था और शाम को जब सूर्यास्त का समय हो रहा था, तब आधा मनुष्य और आधा शेर का रूप बनाकर, हिरण्यकश्यप को बाहर निकलते ही दरवाजे की देहलीज पर पटक दिया और फाड़कर मार दिया। इस प्रकार उस समय न दिन था न रात, न हिरण्यकश्यप बाहर था न अन्दर और न कृष्ण पूरे मनुष्य थे और न पूरे पशु। साथ ही उनके हाथ में न कोई शस्त्र ही था।

नारसिंह का निवास अधिकतर पीपल के वृक्ष के पास माना जाता है। इसकी पूजा अधिकतर स्त्रियां ही करती हैं। प्रत्येक बर्ष नई फसल पर अन्न, गुड़, बदरू आदि लेकर पीपल को पानी डालकर इसकी पूजा की जाती है। इसकी पूजा को 'घयोर चढ़ाणा कहा जाता है। कई बार नारसिंह को जातर भी दी जाती है, जिसमें बकरे की बलि दी जाती है, और रात को खाना खिलाने के पश्चात् रात भर गाना बजाना होता है। इसमें कभी-कभी कोई व्यक्ति खेल कर नारसिंस की प्रसन्नता या अप्रसन्नता एवं जातर की स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना देता है।

परियां इन्द्र की अप्सराएं मानी गई हैं। मनुष्य रूप में होते हुए भी इनके पंख होते हैं और यह उड़नशील मानी गईं हैं। नया कांगड़ा में गुप्तगंगा के तालाब के आगे ६४ पौड़ियां उत्तर कर घुरण्ड नामक स्थान पर परियों का स्नानागृह है। यहां पर माता अच्छरां देवी का मंदिर है, जिसे सन्तान की देवी मानकर पूजा जाता है। जिन स्त्रियों के बच्चे नहीं होते बह वहां पर जाकर स्नान करके माता की पूजा करती हैं। माता की कृपा से उनके यहां अवश्य सन्तान हो जाती है। गर्भवती महिलाएं भी वहां जाकर स्नान करके पुण्य को प्राप्त करती हैं।

गूगा :

गूगा एक राजपूत चौहान था और इसे मुसलमानों ने भादों की पूर्णिमा को मार दिया था। इसकी यादगार में कई जगह छत्र बांधा जाता हैं। छत्र में एक व्यक्ति बड़े से छत्र को जोकि टौर नामक वेल के पतों से गूंथा होता है, तथा बीच में डोरियां लटकाई होती हैं, लेकर चलता है। इसके साथ एक जोगी हाथ में दवातरा लेकर, एक लड़का मोर पंखों का मुट्ठा लेकर, ढोलक वाले की थाप पर नृत्य करता है। जोगी दवातरे पर गूगा की गाथाएं 'गगालें' गा-गा कर सुनाता है। गूगा सलोह में इसका मुख्य थड़ा है। यहाँ पर हर वर्ष भादो महीने में बहुत बड़ा छत्र बांधा जाता

हैं, और बड़ा भारी मेला लगता है। यहां पर जाकर जिन्हें ओपरा अर्थात भूत प्रेत या जादु-टोना किया हुआ हो वह खेलते हैं और सब कुछ बता देते हैं। वहां के बने कड़ाह-प्रशाद को खाने से उनका जादू-टोना दूर हो जाता है। इस छत्र एवं वहां पर बजने वाले ढोलक में इतनी शक्ति है कि जिस भी मर्द-औरत को ओपरा हो, वह दूर से उस छत्र के झण्डे और ढोलक की आवाज को सुन कर खेलना और प्रश्नोत र करना शुरू कर देता हैं।

थान :

थान का निवास मढ़ियों में होता है - और इसका निशान पत्थर का बना चिराग होता है। थान की मढ़ी में और भी कई पत्थर की पिंड़िया रखी हुई होती है। गांव का एक व्यक्ति इसका पुजारी होता है, जिसे 'सयोक' कहा जाता है। थान की पूजा भादों महीने में की जाती है, जिसमें प्रत्येक परिवार अपने।अपने घर से औरा (अन्न) गुड़, मीठी रोटी या बबरू, जिन्हें टिकड़ियां कहते हैं, आदि वस्तुएं थान को भेटं की जाती है। सयोक सात दिन तक उसी औरे से अन्न ग्रहण करता है, और सात दिन तक ही थान के चिराग को जलाये रखता है।

थान को चढ़ाए गए प्रसाद को केवल पुरुष वर्ग ही खाता है लड़कियां या औरतें नहीं। प्रत्येक परिवार के बढ़े लड़के की शादी पर इसे जातर भी दी जाती है, जिसे 'प्यूदा-जछूदा' अर्थात ज्येष्ठ पुत्र की शादी के उपलक्ष्य में दी गई जातर कहा जाता है। इस जातर में दो बकरों की बलि दी जाती है ओर रात को खाना खिलाना एंव गाना-बजाना होता रहता है।

बाबा भोगत :--

बाबा भोगत के नाम पर जो जादू-टोना किया जाता है, उसे 'भांतर' कहा जाता है। भांतर करने के लिए बढ़ा अनूठा ढंग अपनाया जाता है। किसी के साथ विशेषतया पड़ोसी के साथ लड़ाई होने पर प्रायः स्त्रियां धूप जला कर बाबा भोगत को याद करती हैं और फिर 'सिल्ल' (सूखी कांटेदार झाड़ी) लेकर उसका नाम लेकर बाबा से दुआएं करती हैं कि तू इसे खा जाना। बस! फिर भांतर हो जाती है और ज्यूं ही वह कहीं इक्कठे बैठ कर खाते-पीते हैं, वहीं पकड़े जाते हैं। बाबा भोगत उसे बीमारी रूप में खाना शुरु कर देता है। यह बीमारी डाक्टरी इलाज से बढ़ती ही जाती है और यहा तक कि जल्दी भांतर को न मनाया जाए तो एक के बाद एक व्यक्ति उस परिवार का मरता भी जाता है।

भांतर मनवाने के लिए दोनों पक्षों का समझौता होने पर 'खेल-पातर' डाला जाता है। इसमें 'गारड़ी' (जोगी अपने दवातरे के साथ) गुरवाणी गा-गाकर सुनाता है, और चेला या जिस पर भातर की गई हो वह बैसक (जोगी द्वारा नए कम्बल या दरी बिछाकर

बनाया गया स्थान जिसके इर्द-गिर्द मन्त्र द्वारा लक्ष्मण-रेखा खींची गई होती हैं--इसे 'कार' भी कहते हैं) पर खेलता है। बैसक के बाहर खेलने वाले पर यदि भूत प्रेत का प्रभाव पड़ जाए या वह बेहोश हो जाए अथवा यहां तक कि मर भी जाए तो जोगी उसका जिम्मेवार नहीं बनता है। 'खेलकर' दोनों ओर से मनौतियां मनवाई जाती हैं, फिर सभी को इक्कठे बिठाकर कड़ाह-प्रशाद खिलाया जाता है।

घर पर भांतर मनवाने के बाद बाबा भोगत के मुख्य थड़े पर जाकर भेंट चढ़ानी पड़ती है। यह मुख्य थड़ा 'बटवला' (नगरोटा-सूरियां, लंज के निकट) में है, जहां एक सिक्ख मसन्द और एक हरिजन रहता है। थड़े के भीतर प्रसाद चढ़ाने के लिये मसन्द ही प्रवेश करता है। उसकी अनुपस्थिति में हरिजन बाहर से ही या चढ़ाने वालों को अन्दर जाने की इजाजत दे देता है। आधी भेंट को चढ़ा दिया जाता है और आधी को सब मिल कर खाते हैं, तब पूर्णतया भांतर मानी हुई मानी जाती है।

मामा पहाड़िया एवं बाबा सिण्डू :

मामा पहाड़िया अधिकतर गद्दियों के साथ रहता है। वह उनकी और भेड़ बकरियों की रखवाली करता है। मामा पहाडिया के विषय में यह माना जाता है कि इसकी वेशभूषा गद्दियों जैसी होती है और इसके एक हाथ में छोटा-सा डंडा व दूसरे हाथ में छोटा-सा हुक्का (नारियल का) तम्बाकू पीने के लिए होता है। मामा पहाड़िया अगर किसी के घर में प्रवेश कर जाए तो वह उस घर के अन्न व धन दोनों चीजों की बरकत (समृद्धि) को ले जाता है।

किसी भी स्त्री-पुरुष को अगर यह चिमड़ जाए तो सबको बहुत परेशान करता है। खेल पातर डालने पर खेलने बाला चाहे वह स्त्री हो या पुरुष सीटियां बजाना शुरू कर देता है। यहां तक कि कई बार चेले के साथ लड़-भिड़ भी जाता है। मकानों के स्लेटों पर पत्थर पड़ने शुरू हो जाते हैं, जो किसी को भी दिखाई नहीं देते हैं। मन्त्रों के द्वारा चेला इन्हें वश में करता है और फिर किसी निर्जन स्थान पर ले जाकर इसे 'कील' देते हैं। तब यह अपने जाने की कोई निशानी छोड़ कर, जैसे किसी वृक्ष की शाखा आदि को तोड़ कर चला जाता है।

बाबा सीण्डू भी मामा पहाड़िया की ही तरह का एक प्रेत–योनि का देवता माना जाता है। यह भी सीटियां बजाता हुआ आता है। खेल पातर डालने पर चेला ही उसकी सीटियों की भाषा को समझता है और उसके प्रश्नों आदि का उत्तर देता है। गूगल धूप जलाने से यह विशेष प्रसन्नता अनुभव करता है। इन दोनों को स्त्रीगामी, व्यभिचारी व मैथुन संभोग के इच्छुक आक्रामक देवता व दुष्टरूप माना गया है।

जल बताल :

यह प्रेत नदियों में रहते हैं और रात के समय हाथों में मशालें लेकर ऊपर-नीचे घूमते

हैं। इन्हें 'जल-भीर' भी कहा जाता है। रात्रि के समय अगर कोई व्यक्ति मछलियां, ब्याह-शादी का भात आदि लेकर चला हो तो यह उनके पीछे हो जाते हैं इसलिए रात को यदि इन चीजों को लेकर चलना हो तो उन्हें जूठा करके लिया जाता है। जूठी चीजों के पीछे यह नहीं चलते हैं। यह भूत वास्तव में अन्य भूत-प्रेतों की तरह इतने भयानक नहीं होते हैं और न ही किसी प्रकार का विशेष नुकसान ही पहुंचाते हैं।

खेतरपाल एवं कालीपीर :

यह दोनों रावण के राक्षस माने गए हैं। खेतरपाल पशुओं को भूत की तरह चिमड़ता है और उन्हे तंग करता है। पशु इनके लगने से दिन प्रतिदिन बीमारी के कारण कमजोर पड़ता जाता है और अन्ततः मर भी जाता है।

कालीपीर औरतों को लगता है और जिस औरत को यह लगता है, उसकी सन्तान जन्म लेते ही या दो चार दिन बाद कमजोर होकर नीली पड़ती जाती है और अन्ततः मर जाती है। इसे निकालने के लिए चेलों द्वारा खेल पातर का आयोजन करना पड़ता है। यह केवल राम एवं हनुमान जी से डरते हैं।

जख :

जख किसान के पशुओं की रखवाली करता है। सभी पशु किसी न किसी जख के अधीन होते है। मात्र बकरी और घोड़े का कोई जख नहीं होता है। जख दो प्रकार के माने गए हैं—नरहयाणा और कास्ब। नरहयाणा जख का मन्दिर पौग डैम की झील में डूब गया है।

भादों के महीने में थेईयों के दिनों में जख की पूजा की जाती है। अपने पशुओं की जख से मनौतियां मांगने के लिए तथा घर में दूध की कामना हेतु, दो लड़कों को मवेशीखाने के बाहर, पटड़ियों पर गेरी व लाल रंग का टीका लगाकर खड़ा कर दिया जाता है। फिर उनके पैरों पर 'लोलू-पोलू' (खीर–बलेई इत्यादि पकवान) रख दिए जाते हैं तथा उनके सिरों को तीन बार टकराकर, पशुओं की खुशहाली की कामना करते हुए पैरों पर रखे पत्तलों को उल्टाया जाता है और एक का दूसरे का और दूसरे का दूसरे को दे दिया जाता है।

थेईयों के दिनों में किसी को भी दूध नहीं देते हैं। इक्कठा करके इस त्योहार को मनाया जाता है। सावन की संगरांदी को किसान 'चिड़न संगराद' के रूप में मनाते हैं। पशुओं के चिड़न को मारने के लिए यह जख से दुआएँ करते हैं। शाम के समय सभी पशुओं से एक-एक चिड़न छुड़ाकर आटे के पेड़े में रख कर उसे मवेशीखाने के बाहर आग के ढेर में जलाया जाता।

ख्वाजापीर :

ख्वाजा का निवास नदी में माना जाता है। बरसात के दिनों में जब सबसे ज्यादा पानी नदी में आता है उस दिन ख्वाजापीर बाढ़ के पानी में आगे-आगे चलता है। लोकमतानुसार ख्वाजापीर के चलने के साथ-साथ पूरे बैंड बाजे बजते हैं। यह रात को ही चलता है और यहां तक कि कई आदमियों को इन बाजों की आवाजें सुनाई देती हैं। नदी के किनारे की जमीन की रक्षा के लिए ख्वाजापीर की पूजा की जाती है। प्रत्येक वर्ष इसे किसान पांच पाव का रोट, नई फसल का ओरा, दलिया आदि भेंट किया जाता है। कई गाएं भी लोगों ने जख की अपेक्षा ख्वाजापीर के अन्तर्गत रखी हुई होती हैं। उनके ब्याहने पर बाईसवें दिन पूजा के उपरान्त सर्वप्रथम ख्वाजा को दही खीर आदि भेंट कर ग्वालों को खिलाया जाता है और गाय के दुधारू होने की कामना की जाती है।

डैण एवं इन्द्रूनाग :

अन्न लोक देवताओं के रूप में डैण एवं इन्द्रूनाग का विशेष महत्व है। डैण वास्तव में वह गहण स्त्री होती है जिसने मन्त्रों की शक्ति से अपने शरीर को बदल लिया हो। भादों महीने में डैण अमावस्या के दिन डैण एवं इन्द्रूनाग की लड़ाई होती है। इस लड़ाई के पीछे धान की फसल के भविष्य का अनुमान लगाया जाता है। लड़ाई में यदि डैण जीत जाए तो खेती की बरकत किसान को होती है और यदि इन्द्रूनाग जीत जाए तो वह खेती की बरकत को ले जाकर अन्य देवताओं में बांट देता है। इस बात का पता चेला खेल कर देता है। लड़ाई में जहां कोई भी घायल हुआ हो, उसे डोली में बिठाकर लाया जाता है। विश्वास किया जाता है कि जब डोली उठाते हैं तो वह भारी हो जाती है। धान की कटाई के समय भी धान की बालियों को उत्तर दिशा की ओर नहीं रखा जाता है। ऐसा संकेत माना जाता है कि उन बालियों को इन्द्रूनाग ले जाकर देवताओं में तथा काना राक्षस में, जिसे 'बलबीरा' भी कहते है, ले जाकर बांट देता है। धान की फसल के पकने एवं कटने पर अतिवृष्टि एवं ओलावृष्टि इसी के सूचक माने जाते हैं।

इन लोक देवताओं के अतिरिक्त गांव वाले यथासमय वर्षा न होने पर शिव, भैरों, नाग, गूगा आदि की पूजा भी करते हैं। कई बार इनके मन्दिरों को नंगे पांव दरिया से पानी लाकर भर दिया जाता है। कई बार गांव वाले सामुहिक रूप से 'जग' का आयोजन भी करते हैं, जिसमें ज्यादा से ज्यादा लोगों को खाना खिलाया जाता है और रातभर भजन कीर्तन होता रहता है। इसके उपरान्त अवश्य ही थोड़ी या ज्यादा वर्षा हो जाती है।

इसके अतिरिक्त गांव के बच्चे भी एक अजीब ढंग से वर्षा को आमन्त्रित करते हैं। अपने मुंह में कालिख पोतकर और हाथों में लकड़ियां लेकर सबके आंगन में मिट्टी खोदते हुए

यह गीत गाते हैं :—

"ओ मियां ओ, काले मुंहे धो,
नाहले, खोहले जौं बाए
सैंह वी ओ मिया ते ही गुआए
कालियां इटां, धौलियां इटां
भेजां पिट्ठा, बल्द धिआए
हाली भुक्खे घरां जो आए
बर बचारया बर......... ।

इस प्रकार लोक देवताओं की यह परम्परा पीढ़ी–दर--पीढ़ी आगे बढ़ रही है और कृषक वर्ग इन परम्पराओं को जीवन का एक अभिन्न अंग मानकर इन्हे पूरा करने में कोई कसर नहीं उठा रखता है। इन लोक देवताओं की मान्यताओं एवं परम्पराओं के पालन में किसानों को लाभ ही रहता है—इस विषय में किसी की दो राय नहीं हो सकती।

●

राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय गढ़जमूला
तै० पालमपुर, जिला कांगड़ा (हि० प्र०)

शोध प्रबन्ध सार स्तम्भ के अन्तर्गत हिमाचल के कुछ शोध कर्ताओं के शोध सार संक्षेप इससे पूर्व प्रकाशित किये जा चुके हैं। इस स्तम्भ के अन्तर्गत हिमाचल के पी० एच डी० शोध–कर्ताओं के विषयों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इसी कड़ी में डा० मनोहर लाल शर्मा तथा डा० शिव कुमार शर्मा के शोध का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

डा० मनोहर लाल का साहित्यिक परिचय

जन्म, २० सितम्बर १९४८ को ऊना जिले के बड़ेट गांव में ब्राह्मण-परिवार में। आरंभिक परीक्षा धर्मशाला महन्ता तथा चिन्तपुरनी में। १९६४ में मैट्रिक तथा दिल्ली-प्रवास। १९६५ में सेंट्रल बोर्ड आफ सैकैन्डरी एजूकेशन, दिल्ली से प्रैप। और दिल्ली विश्वविद्यालय के दिल्ली कालेज (अब जाकिर हुसेन कालेज) में प्रवेश। १९६८ में बी० ए० (आनर्स) हिन्दी, १९७० में एम० ए० (हिन्दी), १९७२ में एम० लिट (हिन्दी) तथा १९७२ में पी-एच० डी०। सन् १९७२ से श्री राम कालेज आफ कामर्स में अध्यापन कार्य।

लेखन कार्य सन् १९७२ से कविता तथा पत्रकारिता से आरम्भ। सम्प्रति कविता, कहानी, निबन्ध (ललित), शोध तथा आलोचना-समालोचना। धर्ममार्ग, शीराजा, सेक्यूलर डेमोक्रेसी, जन साहित्य, जागृति, दिल्लो, ब्रजभारती, मधुमती, नंदन, सेवाग्राम, पंजाब-सौरभ, आजकल संस्कृति, सन्मार्ग, जीवन-साहित्य, कुरूक्षेत्र, ग्रामजन, हिमप्रस्थ, सोमसी गिरिराज, हिमधारा, दैनिक ट्रिव्यून, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, आज, सारिका, नई दुनिया, वीर अर्जुन, वीर प्रताप, पंजाब केसरी आदि तथा आकाशवाणी, दिल्ली और शिमला से लगभग दो सौ रचनाएं प्रकाशित तथा प्रसारित।

लोक, लोक-संस्कृति हिमाचली जनजीवन तथा लोक-साहित्य के सांस्कृतिक अध्ययन के साथ-साथ ब्रजभाषा काव्य में विशेष। रुचि सम्प्रति हिमाचल में रचित ब्रजभाषा काव्य पर शोध–कार्य में संलग्न।

प्रकाशित थचनाएं :

(१) घनआनंद कवित्तः प्रथम शतक (सम्पादित)
(२) घनआनंद के काव्य में अप्रस्तुत-योजना
(३) हिमाचल पाठमाला-४ (सम्पादित)
(४) हिभारती–५ (सम्पादित)

(५) भारत भारती-६ (सम्पादित)

अप्रकाशित रचनाएं :

(१) घनआनंद के काव्य में सौंदर्य बोध : (लघु शोध प्रबंध)

(२) चन्द्रशेखर वाजयेयी का काव्य (शोध-प्रबन्ध)

(३) सेमल के फूल (ललित निबन्ध संग्रह)

(४) हिमाचल प्रदेश के ब्रज-कवि (साहित्य-इतिहास)

पता : कार्यालय : हिन्दी-विभाग, श्रीराम कालेज आफ कामर्स, दिल्ली-७
आवास : १/१०८५३, गली न० ४, सुभाष पार्क, शाहदरा, दिल्ली–३२

●

शोध-प्रबन्ध का सार-संक्षेप

—डा० मनोहर लाल

ग्रंथ का नाम	:	चन्द्रशेखर वाजपेयी का काव्य
लेखक	:	मनोहर लाल
रचना-प्रयोजन	:	दिल्ली विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० (हिन्दी) की उपाधि के लिये प्रस्तुत (१९७७) शोधप्रबन्ध।
निर्देशक	:	डा० ब्रजनारायण सिंह, वरिष्ठ प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, करोड़ीमल कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
रूपाकार	:	अप्रकाशित (टंकित), पृष्ठ : ५१८।
विषय-वस्तु	:	प्रथम अध्याथ : युगपरिवेश, जीवनवृत तथा कृतियां द्वितीय अध्याय : चन्द्रशेखर वाजपेयी का आचार्यत्व तृतीय अध्याय : काव्य विवेचन (भाव-पक्ष) शृंगार काव्य चतुर्थ अध्याय : काव्य-विवेचन (भाव–पक्ष)शृंगारेतर काव्य : वीर काव्य प्रेम काव्य, नीति काव्य, भक्ति काव्य, अनूदित काव्य पंचम अध्याय : काव्य-विवेचन (कला-पक्ष) षठ अध्याय : उपसंहार परिशिष्ट :

संक्षेप-सार

आलोच्य कवि चंद्रशेखर वाजपेयी की गणना उत्तर रीतिकालीन आचार्य तथा वीर रस के कवियों में की जाती है। इनका जन्म असनी (उ० प्र०) के पास मुअज्जमाबाद गांव में पौष शुक्ल १०, सं० १८५५ वि० को हुआ था। इनके पिता कवि मनि राम गुरूगोविंद सिंह के दरबारी कवि हंसराम के वंशज थे। इन्होने दस वर्ष की अवस्था में अपने काव्य गुरू करनेस महापात्र (अकबर के समकालीन से भिन्न) से विद्यार्जन किया और दरभंगा राजदरबारों (सं १८७७) में होते हुये सं १८८४ वि० में जोधपुर के महाराजा मानसिंह के यहां पहुचे। जोधपुर छोंड़ने के बाद अलवर होते हुये पटियाला पंहुचे और जीवन पर्यन्त

पटियाला में महाराजा कर्मसिंह, नरेन्द्र सिंह तथा महेन्द्र सिंह के राजकवि रहे। इनका देहान्त ७७ वर्ष की आयु में (सं १९३२ वि०) वृन्दावन में हुआ था।

शेखर का अद्यावधि जो कृतित्व उपलब्ध है, वह पटियाला दरबार की ही रचना है। ये ग्रन्थ हैं-शांतिपर्व (१९००-०२) देवी भागवत भाषा (दो भाग) (१९०१), हम्मीर-हठ (१९०२), रसिकविनोद (१९०३), विवेक विलास (१९०५), हरिभक्तिविलास (१९०५-१४), नखशिख (१९१४, श्री गुरुभक्ति पंचाशिका (१९१४-१५), माधवी वसंत (१९३२) तथा फुटकर (भाई कान्ह सिंह बनूड़ी द्वारा संकलित ग्रंथ 'भारती-भण्डार' में)। इनके अतिरिक्त शेखर प्रणीत 'ज्योतिष का ताजक' तथा 'वृंदावनशतक' भी बताए जाते हैं जो उपलब्ध नहीं हैं।

'शान्ति' पर्व (४१ अध्याय) महाभारत के 'शान्ति पर्व के अन्तर्गत (आपद्धर्म-पर्व अध्याय १३१-१७९) का भाषानुवाद है। 'देवी भागवत भाषा' 'देवी भागवत पुराण' का पद्यबद्ध भाषान्तर है। 'हम्मीर हठ' को वीर काव्य का रत्न माना गया है, इसमें महाराणा हम्मीर तथा अलाउद्दीन के भीषण त्रासद संग्राम का ओजस्वी वर्णन है। 'रसिक विनोद' नवरस वर्णन तथा नायिका-भेद विषयक लक्षण–उदाहरण शैली में रचित रीतिग्रंथ है। आचार्यत्व की दृष्टि से यही ग्रंथ शेखर के मूल्यांकन का आधार है। 'विवेकविलास' 'महाभारत' के अन्तर्गत प्रजागर पर्व में वर्णित बिदुर नीति' अर्थात 'धृतराष्ट्र-बिदुर-संवाद' का मार्मिक भाषानुवाद है। इसी तरह 'हरिभक्ति-विलास' पद्म-पुराण' के 'पाताल खण्ड' के ६९-८० वें अध्याय (श्री कृष्ण चरित) का भाषानुवाद है। 'नखशिख' रीति कालीन 'नखशिख काव्य-परम्परा' की अनूठी रचना है। 'श्री गुरुभक्तिपंचाशिका' में 'सिक्खों' के दसों गुरुओं से सम्बन्धित भक्ति तथा प्रशस्ति मूलक छंद हैं। 'माधवी बसंत' माधवानल काव्य-परम्परा की प्रेमगाथा रचना है। शेखर के फुटकर छंदो में दोहा, सोरठा, सवैया, कवित, कुंडलिया तथा छप्पय आदि हैं, इनके विषय हैं—राजप्रशस्ति, नखशिख, नायिकाभेद, शृंगार, नीति, भक्ति, बीरता तथा प्रकृति।

आचार्यत्व की दृष्टि से चन्द्रशेखर वाजपेयी की गणना 'सर्वरस निरूपक' आचार्यों में की जाती है। इसका आधार उनका ग्रंथ 'रसिक विनोद' है। शेखर के आचार्यत्व के संदर्भ में 'रसिक विनोद' का तात्विक अध्ययन करते हुए-लक्षण-लक्षण, रस-निरूपण, रस लक्षण, भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव, स्थायीभाव, नवरस वर्णन, शृंगार, हास्य, करुण रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स, अद्भुत तथा शांत, नायिका-भेद के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आचार्य-कर्म की तुलना में कवि-कर्म के लिए अधिक सफल हुआ है।

शेखर का रस-निरूपण नाट्यशास्त्र, दशरूपक, काव्य-प्रकाश, साहित्य दर्पण, रसमंजरी, रसतरंगिणी, रसराज तथा जगद्विनोद पर आधारित है। शेखर ने रस को अखण्ड, अभंग तथा चिन्मय माना है। रस-निरूपण में भरत मुनि के मत का अनुसरण अधिक है। शेखर ने भाव को मनोविकार माना है। बिभाव (आलम्बन तथा उद्दीपन) का वर्णन शृंगार रस के संदर्भ में किया

हैं। विभाव-प्रकरण में भानुदत के लक्षणों की व्याख्या भर है। विभावों के उदाहरणों में कवि ने काव्यगत सौंदर्य-बोध तथा सामाजिकता की ओर ध्यान दिया है। 'सात्विक-अनुभाव' वर्णन नाट्यशास्त्र' से प्रभावित होते हुए भी 'रसतरंगिणी' तथा 'साहित्य-दर्पण' का अनुकरण मात्र है। 'शेखर' ने भानुदत्तकथित' जृंभा का उल्लेख नहीं किया हैं। कतिपय अनुभावों के लक्षण मूल लक्षणों के अनुरूप नहीं हैं। अनुभावों के उदाहरण शृंगारिक हैं। अनुभावों में कतिपय प्रमुख अनुभावों की ही योजना हो सकी है, इसलिए उन्हे सर्वांग नहीं कहा जा सकता। शेखर ने संचारी भावों का क्रम किसी उपजीव्य ग्रंथ के आधार पर न रखकर शरीराश्रित अनुभावों को प्राथमिकता देते हुए किया है। संचारी-भावों के लक्षणों के लिए कवि ने 'दशरूपक' तथा 'रस-तरंगिणी' की अधिक छाया ग्रहण की है। यहां भी कवि उपजीव्य ग्रंथों के लक्षणों को सर्वांगीणरूप में ग्रहण नहीं कर सका है। संस्कृत-लक्षण का उतना ही अंश अपनाया गया है जितना अपने दृष्टिकोण से कवि ने उपयोगी समझा है। संचारियों के उदाहरण लक्षणों के अनुरूप तथा शृंगार रस प्रधान है।

शेखर के आठ स्थायी भावों की संख्या 'नाट्य-शास्त्र' तथा 'रसतरंगिणी' के अनुरूप तथा नवम् स्थायी भाव 'शम' का उल्लेख काव्य रीति के आधार पर है। शेखर ने उत्साह के परिप्रेक्ष्य में भानुदत के अनुरूप उत्साहपरक युद्ध-दान-दयावीर का उल्लेख न करके अपने प्रतिपादन को युद्ध तक ही सीमित रखा है। स्थायी भावों के लक्षण अपने में पूर्ण हैं। 'नवरस वर्णन' में 'शृंगार-वर्णन में कवि ने अधिक रुचि ली हैं और शृंगारेतर रसों का वर्णन सामान्य ढंग से चलता कर दिया है। 'रसतरंगिणी' तथा 'रसमंजरी' को आधार बना कर भी कवि ने वियोग शृंगार के अन्तर्गत काम-दशाओं तथा हास्य एवं वीर रस के भेदों की चर्चा नहीं की है। हाव-वर्णन में शेखर के लक्षण आधार ग्रंथों की तुलना में त्रुटि-पूर्ण हैं। शृंगारेतर रसों के लक्षणों में कवि ने स्पष्ट रूप से किसी संस्कृत ग्रथ का प्रत्यक्ष आश्रय नहीं लिया है। शेखर के ये लक्षण रचना-विधान की दृष्टि से परम्परा का निर्वाह भर हैं। इनमें संस्कृत-ग्रंथों की शास्त्र-सम्मत अपेक्षाओं का अभाव है, इसलिए मौलिकता संदिग्ध है।

चन्द्रशेखर बाजपेयी का नायक-नायिका-भेद निरूपण 'रसमंजरी' पर आधारित है। इसके अतिरिक्ति कवि ने 'रतिरहस्य,' 'कामसूत्र,' 'चरक-संहिता', 'नाट्यशास्त्र', 'दशरूपक', 'साहित्य-दर्पण', 'रसिक-प्रिया', 'रसराज' तथा 'जगद्विनोद', प्रभृति ग्रन्थों का भी सहारा लेकर अपने कृतित्व को शास्त्र-सम्मत तथा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया है। नायिका-भेद का क्रम 'रसमंजरी' के अनुरूप रखकर कुछेक नायिकाओं के नाम भर बदले हैं और भानुदत के विस्तार की अपेक्षा यथासंभव संक्षेपण में रुचि ली है। लक्षण-निरूपण केदुरूह कार्य में परम्परा का पिष्टपेषण होने से मौलिकता नगण्य है। अष्टविध नायिका-भेद-निरूपण में कवि ने 'प्रोषित-भर्तृका', के लिए 'विरहिणी' कर दिया है। साथ ही रीति-परम्परा का अनुसरण करके आगतपतिका' के उल्लेख से इनकी संख्या नौ कर दी है।

शेखर विरचित मुग्धा, मध्या, खंडिता, नवौढ़ा, ज्येष्ठा-कनिष्ठा, प्रोषित-पतिका तथा

वासकसज्जा के लक्षण, संस्कृत-लक्षणों का अनुवाद भर है। इनमें कवि को ब्रजभाषा तथा संस्कृत की प्रकृति की भिन्नता के कारण कहीं-कहीं शब्द-योजना में अन्तर करना पड़ा है। अतः पराश्रित होने के कारण ये लक्षण मौलिक नहीं कहे जा सकते । स्वकीया, अज्ञातयौवना, गुप्ता, विदग्धा, अनुशयना, भविष्यविरह प्रोषितपतिका तथा वर्तमान विरह प्रोषितपतिका के लक्षणों में संस्कृत–लक्षण को आधार बना कर कुछ परिवर्तन एवं संशोधन करने का प्रयास किया गया है। ऐसे लक्षणों में 'रसमंजरी' के अतिरिक्त 'साहित्य-दर्पण', 'रसराज' तथा 'जगद्विनोद' की छाया अधिक है। कहीं-कहीं तो शेखर प्रणीत लक्षणों के दोहा छंदों के पूरे के पूरे चरण ही 'रसराज' आदि ग्रन्थों से हैं। शेखर को भानुदत्त के जिन लक्षणों में अस्पष्टता का आभास हुआ है, उनकी अपने ढंग से व्याख्या भर कर दी गई है। इन लक्षणों की रचना में कवि ने परम्परा का कुछ ग्रहण भी किया है और कुछ परित्याग भी। यह परिवर्तन-परिवर्धन प्रकृति नायक-नायिका-भेद प्रकरण की अपनी विशेषता है । परकीया, रतिप्रीता, कलहान्तरिता, गणिका तथा अधमा नायिकाओं के लक्षण ऐसे ही हैं । इन लक्षणों में कवि ने नायिका-भेद की सामाजिकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जिन लक्षणों में कवि ने संस्कृत-लक्षणों का ब्रजभाषा में अक्षरशः अनुवाद करने का प्रयास किया है, उनमें नायिका विशेष की मानसिकता की सुरक्षा हो सकी है । ये लक्षण-शास्त्र-सम्मत हैं। जिन लक्षणों की रचना में कवि का दृष्टिकोण संशोधन मूलक रहा है, उनकी मूल-संवेदना में बिखराव है । ऐसे लक्षण मूल-लक्षणों की व्याख्या अधिक हैं।

लक्षिता, कुलटा, मुदिता तथा अनुशयना के लक्षण संस्कृत-लक्षणों की तुलना में स्वतंत्र तथा स्वरचित इसलिए कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनकी भाषा परम्परा से प्रभावित नहीं है, मात्र प्रतिपाद्य का पिष्टपेषण है इनमें कवि रीतिकाव्य-परम्परा का अनुसरण करके आचार्य तथा कवि-कर्म का निर्वाह ही कर सका है, मौलिक स्थापना नहीं।

ब्रजभाषा तथा संस्कृत की प्रकृति की भिन्नता, मूल लक्षण की अस्पष्टता, दोहे के कलेवर की सीमा के कारण कवि नायिकाओं की शास्त्र-सम्मत चेष्टाओं के चित्रण में भी असमर्थ रहा है। खंडिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, अभिसारिका की दशा मध्या प्रौढ़ा धीरा तथा प्रौढ़ा धीरा-धीरा के लक्षण ऐसे होते ही हैं जिनमें शास्त्रीय मान्यताओं का सम्यक निर्वाह नहीं हो पाया है।

शेखर का जातिगत नायिका-भेद भी लक्षण की दृष्टि से परम्परा का पिष्टपेषण है। उसमें कवि या नारी के प्रति भोग्य दृष्टिकोण प्रबल है । जातिगत नायिका-भेद, कामशास्त्रीय मान्यताओं पर अधिक आश्रित है।

शेखर का 'नायका भेद' निरूपण भी 'रसमंजरी' के अनुरूप है। यहां भी कवि ने 'दशरूपक

'साहित्य-दपर्ण', 'रसराज' तथा 'जगद्विनोद' की सहायता ली है। लक्षण, संस्कृत-लक्षणों का अनुवाद भर हैं।

नायक-नायिका-भेद विषयक उदाहरण रचना में कवि आचार्य तथा कवि-कर्म की ओर बराबर सतर्क रहा है। लक्षण-उदाहरण में सम्यक एकरूपता स्थापित करने के लिए युग-बोध, लोक-व्यवहार तथा नायिकाओं की मनोदशाओं की सटीक व्यञ्जना करने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि कुछ लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में एकाधिक उदाहरण रचे गए हैं। आनन्द-संमोहा, क्रिया विदग्धा, स्वकीया प्रवत्स्य-पतिका, स्वकीया वासकसज्जा, मुग्धा, अज्ञात-यौवना, लक्षिता, कुलटा तथा मुदिता आदि के उदाहरण शास्त्र सम्मत तथा कवित्वमय हैं, किन्तु आलोच्य कवि का कवि-कर्म, सर्वत्र आचार्य-कर्म का सम्यक निर्वाह कर सका हो, ऐसी बात भी नहीं है। अनेक स्थलों पर रससिद्ध कवि भावों के प्रवाह में बह कर उदाहरणों में नायिकाओं की उन चेष्टाओं तथा दशाओं की पूर्ण नियोजना नहीं कर सका है, जिनका लक्षणों में उसने उल्लेख किया है। खंडिता, प्रौढ़ा, धीरा, प्रेम, गर्विता, विश्रब्धा, नबौढ़ा, मध्या, बचन-बिदग्धा, अनुसयना, सामान्या, उत्कंठिता तथा गणिका प्रोषितपतिका के उदाहरणों में यह दोष देखा जा सकता है। इनके उदाहरणों में कवि एक ही वर्ग की भिन्न २ नायिकाओं की चेष्टाओं तथा मनोदशाओं में व्यावर्तक रेखा नहीं खींच पाया है। ऐसे उदाहरणों का जब लक्षण हटाकर अध्ययन किया जाता है, तब यह कहना कठिन हो जाता है कि अमुक उदाहरण किस नायिका का है। ऐसा उदाहरणों के प्रतिपाद्य की एकरूपता, विचार-साम्य तथा लक्षण की अपेक्षाओं की उपेक्षा से हुआ है।

अतः कहा जा सकता है कि नायक-नायिका भेद निरूपण परम्परा का निर्वाह भर है न अधिक शास्त्र सम्मत और न ही मौलिक। अधिकांश लक्षण उदाहरण स्पष्ट तथा बोधगम्य होते हुए भी 'रसमंजरी', 'रसराज' तथा 'जगद्विनोद' की तुलना में उत्कृष्ट नहीं हैं। यहां आचार्यत्व की तुलना में कवि कर्म अधिक सफल है। शेखर का आचार्य कर्म मात्र रस तथा नायिका भेद तक ही सीमित है, कवि ने अन्य काव्यांगों अलंकार, छंद, दोष, गुण, रीति वृत्ति आदि का वर्णन नहीं किया है। आचार्यत्व की दृष्टि से शेखर की उपलब्धि मात्र यही है कि रस तथा नायिका भेद प्रसंग सामान्य पाठक का हृदयंगम कराने के लिए काव्यभाषा में प्रस्तुत कर दिए हैं। इस दृष्टि से कवि आचार्यत्व की अपेक्षा कवि कर्म में अधिक सफल रहा है और उसका उदाहरण पक्ष स्पष्ट तथा सहज बोधगम्य भी है।

शेखर के श्रृंगार काव्य में 'रसिक विनोद', 'नखशिख', 'माधवी बसंत' तथा श्रृंगारपरक फुटकर छंद विचारणीय है। संयोग श्रृंगार के वर्णन में कवि का दृष्टिकोण अतीन्द्रिय तथा मांसल है। संयोग श्रृंगार के विविध प्रकरणों में नारी के योग्य रूप को अभिव्यक्ति प्रदान करके दरबारी वातावरण की अतिशय बिलासिता को वर्ण्य बनाया गया है। मुक्त काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्यों में संयोग के इतिवृतात्मक वर्णनों के लिए पर्याप्त स्थान रहता है। यही कारण है कि 'हम्मीरहठ' तथा 'माधवी बसंत' में संयोग श्रृंगार की विभिन्न स्थितियों का विस्तृत तथा सांगोपांग वर्णन किया है। दर्शन, संलाप, स्पर्श, आलिंगन, चुम्बन, दंतक्षत, सुरत, विपरीत रति तथा सुरतांत प्रसंगों में

मांसलता तथा उद्दाम कामोद्रेक देखा जा सकता है। बिप्रलंभ-श्रृंगार में कवि ने वियोग की उत्पत्ति, प्रभाव तथा परिणाम के चित्रण के साथ-साथ विरह-बेदना को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सौंदर्य, रूपासक्ति तथा रूप-लिप्सा को महत्व दिया है। वियोग की अतिशयता के चित्रण में अतिशयोक्ति तथा अत्युक्ति का भी प्रयोग किया है। मानजन्य वियोग में मध्या, अधमा तथा खंडिता की मनोदशाओं का सूक्ष्म वर्णन नारी-हृदय की स्थिति का सूचक है। मानवतियों की हृदयगत कठोरता पर क्षोभ तथा आक्रोश व्यक्त करने के लिए सखियों तथा दूतियों से तीखी व्यंग्योक्तियों की बौछार कराई है। प्रायः बिरहिणियों को विषाद बिवशता तथा उदासीन चित्रित किया गया है। प्रवास-प्रसंगों में कवि ने नायक- नायिका दोनों ही की बिरह-व्यथा का संवेद्य वर्णन किया है। शेखर का वियोग बर्णन रीतिकालीन कवियों की तरह ऊहात्मक नहीं है, वियोग-वर्णन सामाजिक दृष्टि से भी यथार्थ तथा व्यावहारिक है। काम-दशाओं के चित्रण में भी कवि ने 'पूर्वराग' के परिपेक्ष्य में रूप-सौंदर्य तथा रूपासक्ति को प्रधानता देकर नायिकाओं की मनः स्थितियों का वर्णन किया है

'नखशिख-वर्णन' में कवि ने दिव्य तथा आदिव्य सौंदर्य-चित्रण में भेद न स्वीकार करके 'नखशिख, पद्धति को अधिक अपनाया है। सौंदर्य-चित्रण में कवि की दृष्टि मानवी-रूप-वर्णन पर अधिक टिकी है। शेखर का नखशिख 'भावमूलक' तथा 'चमत्कारमूलक' है। भावमूलक में सर्वांग अथवा अंग विशेष का सहज सौंदर्य-चित्रण है और चमत्कारमूलक में पांडित्य-प्रदर्शन की दृष्टि से वैदग्ध्यपूर्ण कल्पना-बिलास से अप्रस्तुतों की योजना में दूर की कौड़ी पकड़ लाने का प्रयास किया गया है। भावमूलक नखशिख रमणीय, आकर्षण तथा भाववैभव का द्योतक है। कवि ने नायक के हृदय में प्रेमांकुरों को उन्मादक बनाने के लिए नायिकाओं के हावों, अनुभावों की भी अतिरंजित व्याख्या की है। पदनख, कटि, केश, मुख तथा नेत्र तथा सर्वांग-वस्त्राभरण के प्रसंग चमत्कारमूलक हैं। ऐसे प्रसंग अप्रस्तुत-योजना की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। चमत्कारमूलक नखशिख में कवि ने अलंकार-योजना में विशेष रुचि ली है, इसलिए सौंदर्य-चित्रण में वह तरलता तथा सहजता नहीं आ पाई है जो घनआनन्द प्रभृति कवियों के काव्य में है। शेखर के नखशिख-वर्णन की यह पद्धति बहुत कुछ केशव से प्रभावित होने के कारण नबीनता प्रस्तुत कर पाने में सक्षम नहीं है।

शेखर का षड्ऋतु-वर्णन प्रकृति के सहज सौंदर्य तथा रागोद्दीप्ति दोनों को स्पष्ट करने में समर्थ है। बसंत तथा वर्षा-वर्णन में भावोद्दीप्ति अधिक मुखर है। शिशिर के संदर्भ में कवि ने आश्रयदाताओं के सुखोपभोग तथा वैभव-बिलास के प्रसाधनों का अच्छा वर्णन किया है। शेखर ने रीतिकालीन अन्य कवियों की तरह श्लिष्ट शब्द योजना द्वारा चमत्कार प्रदर्शित न करके प्रकृति के स्वाभाविक चित्रण को प्रमुखता प्रदान की है और परम्परागत काव्यरूढियों का उपयोग किया है। शेखर के फागक्रीड़ा, जलक्रीड़ा प्रसंगों में घोर-श्रृंगार वर्णन करके रीति-कवियों की श्रृंगारिक प्रवृत्ति को व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया है। कतिपय नग्न-चित्रण कामशास्त्रीय प्रभाव के व्यंजक हैं। श्रृंगार-रस के संदर्भ में हास-परिहास के प्रसंग संयत हैं, घिननेन अथवा छिछले नहीं। कवि

बिरल ही हैं। शेखर के अमूर्त के लिए अमूर्त उपमान सूक्ष्म तथा वायवी हैं। शेखर को परम्परागत अप्रस्तुत-योजना में भी काव्य-सौंदर्य के विधायक तत्वों का समावेश हैं।

शेखर की **बिम्बयोजना** ऐन्द्रिय–बोध के आधार पर विशिष्ट संवेदनों को समेटती हुई चाक्षुष, स्पृश्य, श्रोत, लक्षित तथा उपलक्षित संदर्भों में अधिक सजीव बनी है। युद्ध, वीर तथा शृंगार परक रचनाओं में बिम्बों की रेखाएं गंभीर तथा स्पष्ट हैं। नायक-नायिकाओं के शृंगार प्रसाधनों, वेशभूषा के रंग-वैभव के साथ-साथ उनके मानसिक व्यापार, गुण, क्रिया-कलाप तथा स्वभाव के पहलू भी बिम्बों में सीमित हैं। संयोग-वियोग सम्बन्धी उद्दीपन सामग्री तथा अनुभाव योजना को चित्रित करने में बिम्बों की रेखाएं विषयानुकूल सूक्ष्म, स्थूल, तीक्ष्ण, बंकिम तथा गहरी हैं। शेखर के काव्य में सरल, खंडित तथा समाकलित बिम्ब बहुत कम हैं। शेखर की अधिकांश बिम्ब-योजना में से स्थूल इन्द्रिय, संवेदन जागृत होकर, मन पर, वर्ण्य–विषय के प्रभाव का अंकन करते हैं। कवि दृश्य, स्पृश्य तथा श्रावणिक बिम्बों की योजना में अधिक सफल हुआ है। स्पृश्य-बिम्ब योजना संयोग के क्षणों में सुखद स्पर्शों का बोध कराती है। और वियोग में बिरह जन्म, तपन का। चाक्षुषबिम्ब, वर्ण-योजना की चकाचौंध तथा विभिन्न रंगों की चमक का सफल अंकन करते हैं। श्रावणिक विम्ब संगीत, नृत्य तथा युद्ध के ध्वनि समूहों का कथन करने में समर्थ हैं। ये बिम्ब कवि की पूर्णाभूति के संस्कार हैं। इस बिम्ब-योजना की प्रमुख विशेषता सहजानुभूति से प्रेरित भावोद्रेक का मूर्तिकरण है।

शेखर की वर्ण योजना में प्रसंगानुकूल वर्णों का जड़ाऊपन है, इससे भाषा में लालित्य तथा नाद-सौंदर्य आ गया है। शेखर के वर्ण-संगीत, वर्ण-मैत्री तथा वर्ण-संगति में माधुर्य, प्रसाद तथा ओज गुण का अद्भुत तादात्म्य है।

शेखर की भाषा-शक्ति का एक आधार समृद्ध **शब्द भण्डार** है। विषय, भाव तथा पात्रानुकूल शब्द-योजना कवि की काव्यकला की विशेषता है। दरबारी वातावरण के प्रभाव से कवि ने अरबी फारसी शब्दों का सार्थक प्रयोग किया है। युद्धादि वीर-रसात्मक प्रसंगों की शब्द-योजना रासो-ग्रंथों की शैली में प्राकृत तथा अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। पंजाबी तथा खड़ी बोली की शब्दावली तथा क्रियापद शेखर की भाषा की विशेषताएं हैं।

कवि शेखर को भाषा के अर्थ और शब्दगत सौंदर्य की परख थी। यही कारण है कि समूचे काव्य में **माधुर्य ओज तथा प्रसाद गुण** का सुंदर परिपाक हुआ है। शेखर का शृंगारमूलक काव्य माधुर्य तथा वीररसात्मक काव्य ओज गुणमय है। प्रसाद की झलक अधिकांश वर्ण्य विषयों में देखी जा सकती है। प्रसाद का समावेश यत्र-तत्र माधुर्य तथा ओजगुण में भी हो गया है। **मुहावरे तथा लोकोक्तियां** भी कलापक्ष का उपादान हैं। शेखर की कविता में इनका प्रयोग सहज ही है। नीति के प्रसंगों में इनका प्रयोग अधिक है और इनसे शेखर की सामाजिकता झलकती है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी को संगीत तथा छंद का भी अच्छा ज्ञान था। शेखर की कविता में

संगीत की पारिभाषिक शब्दावली मन्द्र, मध्य, तार, राग-रागिनी' आलाप, तीन ग्राम, सरगम, मूर्च्छना, मीड, सप्तसुर, लाग-डांट, सम तथा कूट तान आदि का उल्लेख मिलता है। छंद के क्षेत्र में शेखर ने शृंगार, वीरता, भक्ति तथा नीति मूलक प्रसंगों में कवित्त, सवैया तथा छप्पय का अधिक प्रयोग किया है। वीरकाव्य के प्रसंगों में चौपाई, भुजंग प्रयात, पद्धरि तथा तोटक का प्रयोग है। शेखर की कविता में छंद-बाहुल्य तथा छंद-परिवर्तन की प्रवृति विषयानुकूल है। प्रमुख छंदों के अतिरिक्त शेखर द्वारा प्रयुक्त छंद इस प्रकार हैं—रौला, चौपैया, निसानी, रामलीला, हरिपद, हरिगीतिका, नागसरूपिणी, हरिरूप, फूलना, त्रिभंगी, तोटक, तोमर, मालिनी, शिखरिणी, तारक, ललित, मोतीदात्र, गंगोदक, चर्पट, षटपद, लक्ष्मीधर, चूड़ामणि, रत्ता तथा अमृतध्वनि।

चन्द्रशेखर वाजपेयी ने अपने युग में प्रचलित प्रमुख छंदों के साथ-साथ गौण अथवा कम प्रचलित छंदों को भी अपनाया है। रीतिकालीन अधिकांश कवियों की भांति शृंगार तथा वीर रस के लिए कवित्त सवैया तथा छप्पय का प्रयोग किया है। सवैया के भेदों में मत्तगयंद, अरसात, किरीट तथा दुर्मिल, कवित्त के भेदों में मनहर तथा रूपघनाक्षरी कवि के अधिक प्रिय रहे हैं। इनके अतिरिक्त छप्पय, हरिगीतिका, रौला भुजंगप्रयात, द्रुतविलम्बित तथा त्रिबंगी आदि छंद शृंगार वीर भक्ति तथा नीति आदि सभी वर्ण्य-विषयों के प्रतिपादन में सक्षम सिद्ध हुए हैं, किन्तु सवैया कवित्त दोहा तथा चौपाई की तुलना में इनका परिमाण अधिक नहीं। शेखर ने अनुदित रचनाओं में छंद वैविध्य को अधिक महत्व दिया है। माधवी बसंत तथा हम्मीर हठ प्रभृति प्रबन्ध काव्यों में भी वर्ण्य विषय तथा प्रसंग के अनुकूल छंद-परिवर्तन की प्रवृति अपनाई गई है। इस छंद-योजना में वर्ण-अथवा मात्राओं के न्यूनाधिक्य का कुछ स्थलों पर जो दोष मिलता है उसका सारा श्रेय कवि को नहीं दिया जा सकता। शेखर की अधिकांश रचनाएं हस्तलेखों की प्रतिलिपियों के रूप में उपलब्ध हैं। छंद-दोष लिपकों की असावधानी का परिणाम भी हो सकता है। शेखर की समग्र छंद योजना में सवैया कवित्त छप्पय भुजंगप्रयात तथा चौपाई नियम-संयुक्ता विषयानुकूल चयन तथा लय की रमणीयता पग-पग पर दृष्टव्य है।

अस्तु शेखर सफल रससिद्ध दरबारी कवि, कवि-शिक्षक शृंगार तथा वीररस के व्याख्याता युद्ध कलाविद, रसिक, भक्त संस्कृत के पंडित अनुवादक तथा आचार्य कवि सिद्ध होते हैं।

●

हिन्दी विभाग
श्रीराम कालेज आफ कार्मस, दिल्ली-७

साहित्यिक परिचय

नाम : डॉ० शिव कुमार शर्मा, वरिष्ठ प्राध्यापक राजकीय महाविद्यालय, बिलासपुर (हि० प्र०)

जन्मशिक्षादि : जन्म १९२९, एम०ए० हिन्दी व संस्कृत, एम०ओ०एल० बी०टी० पी०एच०डी० पंजाब वि० वि० एम०ए० संस्कृत में प्रथम श्रेणी में सर्व प्रथम स्थान। १९५० से अध्यापन व्यवसायरत, स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षण के सभी स्तरों का सुदीर्घ अनुभव। हिमाचल शिक्षा विभाग में १९५० से अध्यापन संलग्न।

लेखन कार्य : १९६१ में हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियां (संप्रति अष्टम संस्करण) "अशोक निबन्ध सागर" का सहलेखक, "हिम भारती-भाग-३, अष्टम कक्षा के लिए हिन्दी पाठ्य पुस्तक का लेखन व संपादन, "निबन्ध निकुंज" (मुद्रण यंत्रस्थ)। 'रीतिकाव्य पर काम शास्त्रीय-प्रभाव' शोध प्रबन्ध 'संस्कृत गीति काव्य' (प्रकाश्य) विश्व विद्यालयी शोध पत्रिकाओं तथा हि० प्र० भाषा व संस्कृति अकादमी की पत्रिका में अनेक शोध पत्र प्रकाशित।

'हिन्दी साहित्यकार कोश' 'रेफ़रेंस इंडिया' तथा 'रेफ़रेंस एशिया' में लेखक व समीक्षक के रूप में चर्चित।

शिव कुमार शर्मा

रीतिकालीन काव्य पर काम-शास्त्र का प्रभाव

—डॉ० शिव कुमार शर्मा

रीतिकालीन शृंगारी हिन्दी-काव्य परंपरानुसारीकाव्य है। यह प्रकृति और प्रवृत्ति की दृष्टि से कई शताब्दियों पूर्व के भारतीय साहित्य और समाज से अनुबद्ध है। कामशास्त्र के जो विधान एवं प्रेरक तत्त्व संस्कृत–प्राकृत तथा अपभ्रंश के साहित्यों को प्रभावित करते रहे हैं, वे देश और काल की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार रीतिकालीन शृंगारी काव्य को प्रचुररूप में प्रभावित करते रहे हैं। निःसन्देह हिन्दी का रीतिकालीन साहित्य ऐश्वर्यमय मुगल दरबार, हिन्दू नरेशों और सामन्तों के विलासबहुल आश्रय में पनपा, किन्तु उसका आधार हजारों वर्ष पुरानी वह शृंगार-परम्परा है जिसके दर्शन वात्स्यायन के कामसूत्र तथा उसके परवर्ती काम-शास्त्रीय ग्रन्थों में होते हैं। केवल हिंदी-रीतिकाव्य का ही शृंगार नहीं, बल्कि समूचे भारतीय काव्य का शृंगार इन काम-शास्त्रीय ग्रंथों का परिष्कृत एवं परिवर्द्धित साहित्यिक संस्करण है। अतः भारतीय शृंगार-साधना के वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूपों के विश्लेषण के लिए इन काम-शास्त्रीय ग्रंथों की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना नितान्त समीचीन होगा। सच बात तो यह है कि भारतीय काम–शास्त्र विज्ञान की अपेक्षा विचार और काव्य के अधिक निकट पड़ता है। अतः शृंगारी काव्यों के वर्णनों और उसके विज्ञान को कामशास्त्र ने अत्यधिक प्रभावित किया है। शायद ही संसार में किसी देश के काम–शास्त्र ने वहां के काव्य को इतनी विपुल मात्रा में प्रभावित किया हो जितना कि भारतीय शृंगारी काव्य को यहां के कामशास्त्र ने। साहित्य में चित्रित शृंगार क्षेत्र के प्रेम के सैद्धान्तिक पक्ष का नियमन काव्यशास्त्र से होता रहा, किन्तु प्रेम के व्यावहारिक पक्ष —प्रेमी-प्रेमिकाओं की प्रेम चेष्टाओं, सात्त्विक अनुभवों, लीला-विलासादि, इयत्ता रहित प्रेम व्यापारों का संचालन सदा काम-शास्त्र ही करता है। शृंगारी काव्य के सौंदर्य-पक्ष अर्थात् रसानुभूति तथा प्रेम भावना के सम्यक् अबोध के लिए जहां काव्यशास्त्रीय ज्ञान आवश्यक है, वहां उस के मनोविश्लेषणात्मक पक्ष के उद्घाटन के लिए कामशास्त्रीय मर्यादाओं का ज्ञान नितान्त उपादेय है।

रीतिकालीन शृंगारी -साहित्य पर काम–शास्त्र का प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में पड़ा। हमारा यह विश्वास है कि रीतिकवि ने काम-शास्त्र की परिवर्ती रचनाओं 'रति रहस्य' 'अनंग रंग' अथा 'पंच-सायक' जैसे संस्कृत-ग्रंथों या इनके हिन्दी रूपान्तरों अथवा रीतिकाल में रचित कोक नामधारी पुस्तकों का प्रत्यक्ष अध्ययन किया था। उसे अपने रसिक श्रोता–वर्ग की रसिकता की तृप्ति के लिए और उसे 'रस रीति' से अवगत कराने के लिए काम-शास्त्र का आश्रय

लेना पड़ता था तथा चमत्कृति उत्पादनार्थ अलंकार-शास्त्र का। काम-शास्त्र के परवर्ती ग्रंथ रुचि, प्रवृति एवं उद्देश्य सभी दृष्टियों से रीतिकाल के शृंगारी कवि के अनुकूल पड़ते थे। कामशास्त्र के परवर्ती ग्रंथ कामीजनों की कामोद्दीप्ति के हेतु प्रणीत हुए थे जबकि रीति-शृंगारी कवि को रस-रीति के चित्रण के माध्यम से रसिक-जनों की तृप्ति अभीष्ट थी। रीति काव्य में रस-रीति के प्रतिष्ठापक केशव जैसे संस्कृत पंडित के लिए काम-सूत्र का प्रत्यक्ष अध्ययन भी कोई अकल्पनीय नहीं है। उनके कवि-शिक्षा के निमित्त लिखे गये ग्रंथों—'रसिक-प्रिय' † व 'कवि-प्रिया' के कुछ प्रसंगों का काम-सूत्र के साथ अद्भुत साम्य है। परोक्ष रूप से रीतिकाल के शृंगार को प्रभावित करने वाले स्रोत हैं—काव्य शास्त्र और वर्णक ग्रंथों के वे अंश जिनमें कामशास्त्रीय मर्यादाओं व परम्पराओं को समाहित कर लिया गया है, एवं प्राक् रीतिकालीन शृंगारी काव्य जिन में परम्परात्मक रूप से काम-शास्त्रीय विधान शताब्दियों से कवि सम्प्रदाय में प्रचलित थे।

रीतिकाल का शृंगारी-कवि रस–रीति अर्थात् काम की व्यावहारिक कलाओं का केवल ज्ञाता ही नहीं था, बल्कि वह अपने आश्रय-दाताओं के किए उक्त ज्ञान का व्याख्याता एवं काव्य में उस का प्रयोक्ता भी था। रीतिकाल के कतिपय शृंगारी–कवियों—केशव, बिहारी †, मतिराम † तथा पद्माकर † की रचनाओं में अनेक ऐसे प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर यह अनुमान लगाना असंगत नहीं होगा कि प्रायः रीतिकाल के शृंगारी कवि को काम-शास्त्र का ज्ञान था। भले ही वह ज्ञान उसने काम-शास्त्र के प्रत्यक्ष अध्ययन से अर्जित किया हो अथवा उक्त ज्ञान उसे किसी अन्य परम्परा से प्राप्त हुआ हो। देव भी अपने सह-धर्मा अन्य रीतिकवि के समान काम शास्त्र और उसकी सांप्रयोगिक कलाओं के व्यावहारिक ज्ञान-रस रीति आदि से सुपरिचित थे, किन्तु वे अपने काव्य में उक्त कलाओं के नग्न प्रदर्शन के पक्ष-पाती नहीं थे †। रीतिकाल में रचित प्रेमाख्यान काव्यों के प्रणेताओं आलम, पुहुकर, मृगेन्द्र तथा 'छिताई वार्ता' के लेखकों को कामशास्त्र का अपेक्षित ज्ञान था। रीतिबद्ध कवि को मुक्त काव्य की परिधि के भीतर रसरीति के माध्यम से कामशास्त्र के ज्ञान को दर्शाना था, अतः वह अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र नहीं था, किन्तु प्रेमाख्यान-कार अपने प्रबन्ध काव्यों में उक्त ज्ञान की चर्चा करने में कुछ अधिक स्वतन्त्र थे। पद्मावत में जायसी द्वारा निरूपित 'स्त्री खण्ड' तथा 'चित्रावली' में उसमान द्वारा चित्रित संपूर्ण 'काम खण्ड' इसके स्पस्ट उदाहरण हैं। रीतिकाल में रचित प्रेमाख्यानों के अध्ययन से जहां एक ओर मध्ययुग के कथा-प्रेम का पता चलता है, वहां दूसरी ओर इन ग्रंथों के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर इस बात

---

† केशव, रसिक प्रिया ३/४१, ३/४२, ३/४३ और ६/७ तथा काम-सूत्र के साधारण तथा सांप्रयोगिक अधिकरण तुलनार्थ द्रष्टब्य है।

† बिहारी-रत्नाकर दोहा नं० ७६, ३३७, ४५२, १७८, ६४४, २२७, ३१६, (३) म० स० दोहा नं० ६४७, ६५५, ३६, ४३३, ३०६।

† पदमाकर ग्रंथावली, पद नं० २१६, २८१, ४६१, ६१८।

† सुजान विनोद—३/४५।

के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि विलासप्रधान मध्य युग में कोक शास्त्र के अध्ययन की ओर पर्याप्त रुचि थी तथा इस विषय का जनसामान्य में विशेष प्रचार था :—

सीखति कोक चतुर सुजाना,
जो कछु भेद सगीत बखाना। (रसरतन)

चौदह विद्या कोक बखानै,
अंगवास मंमथ की जानै।

कोक रीति कन्दला सिखाई,
माधोनल पैं सखी-पठाई ॥
(माधवानल कामकन्दला)

हिन्दी के रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों में कोई विरला ही कवि होगा, जिसने अपने काव्य में 'रस रीति' 'रसवाद' 'रसकेलि' 'रह रहस्य' 'रस बातन' या 'रस ख्यालन' आदि शब्दों का प्रयोग न किया हो। हिन्दी के कई विद्वानों ने 'रस रीति' का अर्थ भरतसम्मत काव्य शास्त्रीय पद्धति पर रस निष्पत्ति लिया है, जो कि समीचीन नहीं है। वस्तुतः यह शब्द कामशास्त्रीय संदर्भ को द्योतित करता है। इसका अर्थ कामकलाओं से जनित केलि आनन्द है। काम शास्त्र में रस शब्द का ग्रहण सुरतपर्याय तथा कामशक्ति दोनों अर्थों में हुआ है †। हमारी उक्त मान्यता का समर्थन कामसूत्र से स्पष्ट रूप में हो जाता है। उस में रस, रति, 'प्रीति' भाव, राग, वेग और समाप्ति को रति का पर्याय कहा गया है तथा संप्रयोग, रत, रहःशयन और मोहन शब्दों को सुरत का समानार्थक कहा गया है। रति की फलोन्मुख दशा में उपस्थेन्द्रिय द्वारा रसन किंवा क्षरण से इसे रस कहा जाता है। विद्यापति, सूर, तुलसी, उसमान, केशव, देव, मतिराम, पद्माकर तथा रीतिकाल के अन्य कवियों ने 'रस रीति' 'रस केलि' अथवा 'रसवाद' आदि शब्दों का प्रयोग परम्परागत अर्थों—काम शक्ति, केलिजनित आनन्द एवं कामकलाओं के रूप में किया है। वस्तुतः रीतिकाल के रस रीति परक ग्रन्थ काम शास्त्र के व्यावहारिक पक्ष से अधिक संबद्ध हैं। अतः रीतिकवि के रसरीति एवं नायिका भेद संबन्धी ग्रंथों के आधार पर उस के अपरिपक्व काव्य-शास्त्रीय ज्ञान की दुहाई देना उचित नहीं है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि रीतिकवि के रस-रीति चित्रण का उद्देश्य नायिका-भेद आदि के माध्यम से काम कलाओं के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत करना था। मध्य काल में रति रहस्य, अनंग रंग तथा पंच सायक आदि काम शास्त्रीय ग्रन्थ कामीजनों को रतिरीति का बोध करा रहे थे, तो इधर रीतिकवि के रसरीति परक ग्रंथ रसिकों को रसरीति के माध्यम से काव्यात्मक भाषा में काम कलाओं का बोध करा रहे थे। दोनों के दृष्टिकोणों में साम्य है, भले ही उन की शब्दावली और माध्यमों में अन्तर हो। रतिरीति एवं

† काम सूत्र २/२/३१।

सोमसी

रसरीति की शिक्षा के बीज तत्कालीन विलास एवं ऐश्वर्य प्रधान वातावरण में निहित थे। रीतिकवि ने रस रीति की परिधि में नायिका भेद, बहिः रति, अन्तः रति दंपति चेष्टाओं अर्थात श्रृंगार चेष्टाओं, अनुरक्ता के चिह्नों, दौत्य कर्म, मिलन स्थान, नायिका के यौवन अलंकारों में शोभा' कान्ति, दीप्ति, नख शिख वर्णन, भाव-हाव-हेला आदि कान विकारों, काम दशाओं वियोग के सर्वथा अगंभीर पक्ष - मान के अन्तर्गत प्रणय कलह, मान-मोचन के रसिकता प्रधान उपायों, नायिका के सात्त्विक अनुभावों एवं संचारियों की रसिकताद्दीपक समूची सामग्री को समेट लिया। इसके साथ-साथ उसने मात्र परम्परापालनार्थ अन्य रसों का भी चलता सा वर्णन कर दिया। रीति काव्य में प्रयुक्त 'रस रीति' शब्द एक अतीव सटीक शब्द है और इस के विस्तृत एवं व्यापक अर्थ की बहुत बड़ी अपेक्षा है क्योंकि रीति काव्य का एक बहुत बड़ा भाग रसरीति परक है। हमारे विचारनुसार हिन्दी साहित्येतिहास के रीतिकाल के संदर्भ में रीति शब्द केवल काव्य-शास्त्रीय समग्र नियमों के विधान का ही बोधक नहीं है बल्कि इस में समस्त रसरीति भी समाहित है। हिन्दी रीति साहित्य की आन्तरिक प्रवृत्ति के सम्यक् द्योतन के लिए रीति शब्द के अर्थ विस्तार की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

हिन्दी रीतिकाव्य पर काम-शास्त्र का प्रभाव दो माध्यमों से पड़ा—(क) संस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों एवं अलंकार शेखर जैसे वर्णक ग्रन्थों के अध्ययन से तथा (ख) मध्यकालीन रीति रहस्य, अनंग रंग; पंच सायक आदि काम-शास्त्रीय ग्रन्थों या इनके हिन्दी रूपान्तरों के अध्ययन के द्वारा। हम पहले भी लिख चुके हैं कि रीतिकाल के राजदरबारी श्रृंगार कवि को उक्तिचमत्कार प्रदर्शनार्थ अलंकार शास्त्र का तथा रस रीति शिक्षणार्थ कामशास्त्र का आश्रय लेना पड़ता था। काम शास्त्र के व्यावहारिक प्रसंगों की चर्चा भरत, रुद्रट, भोज तथा धनंजय आदि अलंकार शास्त्री अपने ग्रन्थों में पहले से कर चुके थे। यह प्रक्रिया संस्कृत के परवर्ती काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में बराबर चलती रही। हिन्दी रीतिकाव्य में निरूपित श्रृंगार रस पर दशरूपक, रस मंजरी, रस तरंगिणी तथा साहित्य दर्पण का असंदिग्ध प्रभाव है। रीतिकालीन काव्य शास्त्र में चर्चित—श्रृंगार रस के स्वरूप और उसके भेदों, श्रृंगार रस के आलंबन—नायक नायिका के भेदोपभेदों, उन के मिलन स्थानों, गम्या अगम्य, साध्या-असाध्य, एवं दुःसाध्या आदि नारियों, अनुरक्ता के चिह्नों' नायक नायिकाओं के विविध अलंकारों, श्रृंगार के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत दूतियों व सखियों के कृत्यों, दूतियों और सखियों के भेदों, नायक नायिकाओं की वैनोदिक कलाओं, वियोग-पक्ष के अन्तर्गत काम दशाओं और प्रवास रूढ़ियों पर काम शास्त्र का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। कारण एक तो भारतीय श्रृंगारी कवि † के लिए काम शास्त्र का ज्ञान अनिवार्य ठहरा दिया गया और दूसरा वह भरत के माध्यम से उक्त शास्त्र से प्रभावित होता रहा। भरत ने नाट्य शास्त्र के श्रृंगारी प्रसंगों में काम शास्त्र की अपेक्षित सामग्री का बड़ी कलात्मकता से साहित्यीकरण कर लिया है। काम सूत्रकार वात्स्यायन भरत से सुनिश्चित रूप से पूर्ववर्ती हैं। भरत ने यत्र तत्र कामोपचार के ज्ञान के लिए कामसूत्र तथा कामतंत्र की ज्ञातव्यता का उल्लेख किया है। † वस्तुतः

---

† राजशेखर, काव्य मीमांसा, पृ० ४, ५, ६, ६५ व २२१।

† भरत, नाट्य शास्त्र २४/१४२।

काम शास्त्र में शृंगार शास्त्र का गहन मर्म निहित है। उसमें शृंगार क्षेत्र को पुष्कल सामग्री के सूक्ष्म बीज विद्यमान हैं। काव्य शास्त्र ने शृंगारी प्रसंगों में काम शास्त्र की सामग्री को इतनी दक्षता से अपनाया है कि उनमें विभाजक रेखा खींचना एक दुष्कर व्यापार है। नायक नायिका का मूलोद्भव स्रोत काम शास्त्र है। काम सूत्र में शृंगार रस के पारिभाषिक स्वरूप तथा नायिका भेद के वे सब बीज सूक्ष्म रूप में प्राप्त हो जाते हैं, जो परवर्ती काम शास्त्रीय ग्रन्थों में पल्लवित और पुष्पित हुए। नायिकाओं के स्वकीया, परकीया एवं सामान्या नामक भेदों तथा भरत द्वारा प्रतिपादित धर्म प्रधान, काम प्रधान एवं अर्थ प्रधान नामक शृंगार के भेदों के मूल में काम सूत्र में चर्चित विभिन्न नायिकाओं के प्रति विविध यौन संबंध काम कर रहे हैं।

मध्यकालीन धर्मसाधना में तांत्रिक प्रभाव के फलस्वरूप भक्तिक्षेत्र में काम प्रवेश की प्रक्रिया बड़े जोरों से चली। हिन्दी के मध्य युग में राम और कृष्ण काव्यों में कोक कलाओं का चित्रण उक्त प्रक्रिया का परिणाम है। इन काव्यों में काम का रामी और श्यामीकरण कर के उसे मधुर और उज्ज्वल रसों की संज्ञा से अभिहित किया गया। दिव्य पात्रों के आश्रय में काम कलाओं के उन्मुक्तवर्णन का पथ कालिदास, जयदेव तथा विद्यापति पहले से ही प्रशस्त कर चुके थे। मध्य-युग में सिद्धों की गुह्य साधना, तांत्रिकों के भोगवादी युगनद्धता के चित्रण तथा वैष्णवों की मधुर उपासना के परिवेश में काम केलियों के उन्मुक्त चित्रणों की परम्परा चल रही थी और उस में रतांकन वर्जित नहीं समझा गया। उक्त युग में निर्मित मन्दिरों की भित्तियों पर उत्कीर्ण युगनद्ध मूर्तियों तथा मुगलकाल की विलासोन्मुख चित्रकला में अबाध काम प्रवेश उक्त तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

विद्यापति को संस्कृत साहित्य की शृंगार वर्णन की विशाल परम्परा परम्परागत सम्पत्ति के रूप से मिली थी और उन्होंने उसका यथासम्भव उपयोग किया। जयदेव विद्यापति के परम अनुकरणीय रहे हैं। इन दोनों के काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोणों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। यदि जयदेव के काव्य में हरि स्मरण विलास कला, (काम कला) काव्य कला (नायिका भेद) और संगीत का मणिकांचन योग है † तो विद्यापति की पदावलि में रस रीति (कामानन्द-संभोग कलायें) काव्य कला (नायिका भेद) और संगीत का विचित्र सम्मिश्रण है। जयदेव में भक्ति का झीना आवरण फिर भी जहां कहीं बना रहता है (यद्यपि वह अवास्तविक है) किन्तु विद्यापति की पदावली किसी प्रकार के धर्म व भक्ति की ग्रन्थि से आबद्ध नहीं है। अतः उस में राधा माधव की रहः केलियों का और भी उन्मुक्त गान हुआ है और उस में सर्वत्र रस रीतिवाद का प्राधान्य बना रहा है। यद्यपि विद्यापति ने किसी निश्चित रूप-रेखानुसार पदावली में नायिका-भेदोभेद प्रस्तुत नहीं किया किन्तु राधा और कृष्ण के परकीया प्रेम के सीमित वृत्त में नायिका--भेद का जो भाग सहज में समाविष्ट हो सकता था वह सब कुछ पदावली में है। अतः विद्यापति ने परवर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य तथा रीतिकालीन शृंगारी साहित्य के प्रणेताओं के लिए राधा कृष्ण के व्याज से नायिका भेद की प्रवृत्ति का परोक्ष रूप से द्वार उद्घाटित कर दिया। रीति काल में रस रीति परक

† जयदेव, गीत-गोविन्द—१ १३ तथा १२ ३।

(विलासिता व कामानन्द से संबद्ध) ग्रन्थों के प्रणयन की प्रेरणा का विद्यापति के द्वारा मिलना कोई अकल्पनीय बात नहीं है। विद्यापति के द्वारा रीति कवि के लिए राधा कृष्ण के नाम पर लौकिक शृंगार की अभिव्यक्ति का मार्ग भी पहले से ही तैयार कर दिया गया था। राधा कन्हाई के सुमिरन का बहाना करके प्रणय लीलाओं के उन्मुक्त मांसल चित्र उपस्थित करने वाले रीतिकालीन शृंगारी कवि तथा विद्यापति के दृष्टिकोण, उद्देश्य व परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य है। विद्यापति में फिर भी कुछ न कुछ कलात्मकता बनी रही है जब कि रीतिकवि में इस का उत्तरोत्तर अभाव होता गया।

रीतिकालीन शृंगारी काव्य के संयोग पक्ष पर काम शास्त्र का प्रभाव स्पष्ट है। उस युग का शृंगारी कवि ऐन्द्रिय भोग के प्रति काफी सतृष्ण रहा है। उसने नायिकाओं के अयत्नज अलंकारों में शोभा, कान्ति, दीप्ति व प्रागल्भ्य का विशेष रुचि से चित्रण किया है। ये सब यौवनालंकार सीधे रूप से काम भावना से संबद्ध हैं। इनमें कामविकार अपेक्षाकृत अधिक परिस्फुट होता है। रीति-कवि का मन मानसिक पक्ष से संबद्ध माधुर्य और औदार्य आदि यौवनालंकारों के वर्णन में प्रायः नहीं रमा। उत्तर रीति शृंगारी कवि ने प्रागल्भ्य का खूब जमकर निरूपण किया है क्योंकि इसमें प्रौढ़ाओं और परकीयाओं की काम कला कुशलता अपेक्षित थी। रीतिकाल का शृंगारी कवि तनद्-युति का अनुरागी है, मनःप्रकर्ष का प्रेमी नहीं है। उस के रूप वर्णन का स्थान ऐश्वर्य कथन ले लेता है। नख शिख के वर्णन में उसने उन्नत उरोज, त्रिवलि युत कृशकटि, पीन नितंब एवं मधुर अधर को चुना जो कि यौन दृष्टि से विशेष आकर्षक हैं। रीति कवि के रसिक श्रोता की रसिकता की परीक्षा का मान दंड, कठिन कुच, मधुर अधर तथा नयन विलासों की महिमा को पहचानना मात्र रह गया था। कामशास्त्र की पद्मिनी आदि नायिकाओं के शारीरिक गुणों और योग्यताओं का मूर्तीकरण रीतिकवि की नख शिख वर्णन पद्धति का प्रेरक तत्त्व रहा है। रसिक वर्ग की स्नायविक बेचनी को दूर करने के लिए रीति कवि के पास नख शिख वर्णन की एक अचूक दवा थी। गंधों के वर्णन में रीति कवि ने या तो प्रकृत्या यौनोत्तेजक उत्कट गंधों का बर्णन किया है या उन गंधों का उल्लेख किया है जो मानवीय यौन गंध की सहज अनुरूपता में थीं।

वस्त्र सज्जा में रीति कवि ने यौन दृष्टि से महत्त्वपूर्ण दो वस्त्रों—साड़ी और अंगिया का विशेष वर्णन किया है। अंगिया उन्नत उरोजों से सम्बद्ध होने के नाते रीति कवि का विशेष स्नेह भाजन ब कृपापात्र बनी रही है। आभूषणों की चर्चा के प्रसंग में रीति कवि का मन नारी शरीर के यौनोत्तेजना के गौणकेन्द्रों—वक्ष, कटि और नितंब से संबद्ध आभूषणों तथा रस रंग के वातावरण को मादक बनाने वाले शिंजन प्रधान भूषणों के चित्रण में खूब रमा है। रीतिकाल के शृंगारी-कवि और उस के रसिक श्रोता केवल तंत्रीनाद के ही शौकीन नहीं थे, बल्कि भूषणों की रुनझुन के भी बहुत दिलदादा थे। रीति कवि ने आभूषणों के चित्रण से रमणियों की विभ्रम आदि विलासचेष्टाओं को और भी अधिक मादक बना दिया है।

लीला, विलास विभ्रम, मोट्टायित और कुट्टमित आदि शृंगार चेष्टायें संभोग शृंगार से संबद्ध है, अतः इन के वर्णन में रीतिकवि ने बहुत मनोयोग से काम लिया है। इन्हें हाव के अन्तर्गत रखना

संगत है और इन्हें नायिका के यौवन अलंकार कहने की अपेक्षा वर रमणियों की विलास चेष्टायें या शृंगार चेष्टायें कहना अधिक उचित है। ये अनुभाव पक्ष में आती हैं। रीतिकाल का शृंगारी कवि इन के चित्रण में सदा काम शास्त्र से प्रेरित होता रहा है। सामन्तीय वातावरण में रसिकता की तृप्ति और राग की उद्दीप्ति के लिए इन चेष्टाओं का मनोमुग्धकारी वर्णन रीति–शृंगारी कवि की मनोवृत्ति के अधिक अनुकूल पड़ता था।

रीतिबद्ध काव्य में चित्रित प्रेम बहुधा विस्रंभज न हो कर आहार्य है। इस में नायक-नायिका के परस्पर संधान कार्य में सर्वत्र दूतियों, नर्म अथवा कामसचिवों की मध्यस्थता बनी रहती है। इस से जहां एक ओर प्रेम की वहिरंगता लक्षित होती है, वहां दूसरी ओर रीतिकवि के रस लोलुप नायकराज का प्रच्छन्न कामित्व भी अभिव्यंजित होता है। दूतियों द्वारा अनुसंचित रसिकोंमें ऐन्द्रिय तृप्ति ही संभव है, हृदयों की अद्वैतता अशासित नहीं है। रीतिबद्ध काव्य में नायक नायिका के कामलेखों और परस्पर प्रेषित संदेशों में प्राय: तरलरसिकता है। पत्र और संदेशवाहक पक्षी जो कभी नागरक के सुख-दु:ख के साथी थे, रीतिकाव्य में वे कामदशाओं के उद्घोषक रति-रहस्य के उद्घाटक मात्र रह गये।

रीतिकाव्य में चित्रित विनोदों में कलात्मक सुगमता का स्थान विलासता ने ले लिया। उत्तर रीति काव्य में नायक–नायिकाओं के विनोदों के नाम पर विलासोपकरणों की जमकर चर्चा हुई है। लगता है जैसे कि रीतिकवि, कवि होने के साथ साथ एक कामशास्त्री के दायित्व को भी निभा रहा था। उसने प्रत्येक ऋतु के अनुकूल विलास के चमत्कारी नुस्खों और कामोद्दीपक अमोध मसालों की लम्बी सूचियां प्रस्तुत कर दी है। रीतिकाव्य में चित्रित लाल बंगलों, चांदनी महलों, गुलाब-मंदिरों खसखानों और बाला की वहार वाली चित्रशालाओं का पूरा रहस्य कामशास्त्रोक्त विनोदों के सन्दर्भ के बिना समझा नहीं जा सकता है। रीतिकाव्य में वर्णित ऐश्वर्य एवं विलास के उपकरणों पर विदेशी प्रभाव की कल्पना सर्वथा निराधार है। रीति शृंगारी कवि ने सामूहिक क्रीड़ाओं—झूला झूलना तथा होली आदि में विलासिता के स्वर को सदा उच्च बनाए रखा है। उसने देसी खेलों के वर्णन में अपने आप को आंख मिचौनी और चोर मिहीचनी तक सीमित रखा है क्योंकि इससे स्पर्शजन्य कामवासनात्मक सुख की अधिकाधिक उपलब्धि संभव थी। रीतिकाव्य में निरूपति मनोविनोदों में प्रणय जीवन के बहुत संकुचित पक्ष-केवल ऐन्द्रिय भोग को ही प्रस्तुत किया गया है।

रीति कवि का मन दो वस्तुओं—यौवन और तरुणी तन के चित्रण में अत्यधिक लगा है। यौवन के रसार्द्र चित्रों के व्याज से उसने हावों, भावों और यौवनालंकारों का मनोरम वर्णन किया है तथा तन के आश्रय से उसने काम कलाओं का उन्मुक्त अकंन किया है। रीति काव्य में संभोग के स्पर्शजन्य वासनात्मक सुख के चित्रण पर अत्यधिक बल दिया गया है। रीतिकवि रस रीति का केवल ज्ञाता ही नहीं बल्कि अपने रसिक प्रभुओं के लिए उसका सफल व्याख्याता भी है। नि:सन्देह प्रणय प्रसंगों में काम कलाओं का चित्रण मानव के यौन जीवन की आवश्यकता का तकाजा है, किन्तु उसमें कलात्मकता का योग अनिवार्य है। कलात्मक अभिव्यंजना के बिना साहित्य में काम

कलाओं का चित्रण निश्चयतः उसे काम शास्त्र की ओर धकेलना है। इस दिशा में उत्तर रीति कवि काम शास्त्र के वाक्य ज्ञान तक ही सीमित रहा है। परिणामतः उस के संभोग चित्रण में यत्र तत्र स्थूल मांसलतः उभर आई है। काम शास्त्र के प्रति अत्यधिक आग्रह के कारण प्रायः भारतीय कवियों के संयोग श्रृंगार वर्णन में संभोग की मांसलता अनिवार्य रूप से आ गई है। इस दृष्टि से सामान्यतः भारतीय श्रृंगारी काव्यों और विशेषतः रीतिकालीन श्रृंगारी साहित्य पर काम शास्त्र का प्रभाव निश्चित रूप से अस्वस्थकर सिद्ध हुआ है।

रीतिकाव्य में संभोग कलाओं की अत्यधिक चर्चा को देखकर प्रायः आज का आलोचक आवश्यकता से कुछ अधिक चौंक कर इस काव्य की अश्लीलता की दुहाई देने लगता है। वस्तुतः श्लीलता व अश्लीलता तथा नैतिकता और अनैतिकता आदि युगसापेक्ष मूल्य हैं। एक समय में जो वस्तु नागरकता समझी जाती है, दूसरे समय में वही गर्हणीय बन जाती है। अतः रीतिकाव्य की तथाकथित अश्लीलता को आज के प्रबुद्ध नैतिक मानदंडों पर कसना न्याय नहीं है और न ही रीति काव्य की अश्लीलता को असाहित्यिकता या आसामाजिकता कहना उचित है। अश्लीलता या असाहित्यिकता हमें उस समय प्रतीत होती है जब हम रीति काव्य के चित्र को उसके पूर्ण परिपार्श्व में न देखकर अधूरी आंख से देखते हैं।

रीति कवि की वृत्ति श्रृंगार के वियोग पक्ष के केवल उन अंशों में रमी है, जो रस रीति के पोषक और संभोग के सहायक थे। वियोग का सर्वाधिक अगंभीर पक्ष—मान रीति कवि को विशेष प्रिय लगा है। रीतिबद्ध काव्य में निरूपित वियोग तथा कामशास्त्र में चर्चित वियोग में एक अद्भुत प्रवृत्यात्मक साम्य है। रीतिबद्ध काव्य में संयोग का उल्लास है वियोग का तीव्र विषाद नहीं है। वियोग के प्रसंग में प्रायः रीतिबद्ध कवि काम दशाओं के बंधे बंधाए सांचों, मानिनियों के रीझ खीजमय रसीले वचनों और प्रोषित पतिकाओं के विरहालापों में ऊहा के बल से चमत्कार उत्पन्न करने में सफल हुआ हो किन्तु वह वियोगी-जीवन के भाव विह्वल एवं रसाविल चित्र प्रस्तुत नहीं कर सका है। रीतिबद्ध काव्य में विरह की समस्त गति दूरी अथवा, सखी द्वारा काम संतप्त नायक-नायिका के विरह ताप निवेदन में सिमिट कर रह गई है। इस काव्य के वियोग पक्ष के अन्तर्गत चाहे पूर्वराग या प्रवास की काम दशाओं का निवेदन हो अथवा पत्र या संदेश प्रेषण हो, सर्वत्र दूतियां ऐन्द्रिय मिलनार्थ उत्कट प्रेरणा देती हुई दृष्टि गोचर होती हैं। रीति कवि का सद्यः कृतापराध रस लोलुप नायक खंडिता देवी के प्रसादनार्थ दो उपायों का सहारा लेता फिरता है—या तो वह मानिनी के चरणों पर अपना सिर टिका देता है अथवा दूतिओं और सखियों द्वारा प्रयुज्य मान-भेद के उपायों से कृतकाम होना चाहता है।

काम सूत्र के रतिवर्णन, श्रृंगार चेष्टाओं, रतिशय्याओं के ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण तथा विभिन्न पर्वों और अवसरों पर नायिकाओं के साथ सुरापान व क्रीड़ाओं को देखकर पता चलता है कि तत्कालीन समाज का ऐहिक जीवन पर्याप्त संपन्न व विकसित था। कुछ विद्वानों ने भारतीय श्रृंगार परम्परा और विशेषतः रीतिकालीन श्रृंगारी साहित्य में सुरा, सुन्दरी और संगीत आदि कलाओं के एकत्र योग को देखकर इसे विदेशी प्रभाव कहा है, किन्तु काम सूत्र से यह सिद्ध होता है

कि मुसलमानों के आगमन से बहुत पूर्व हमारे यहां बिलास के रंगीन साधनों का अच्छा विकास हो चुका था। काम सूत्रकार के समय में जीवन का दृष्टिकोण आध्यात्मिकता से हट कर ऐहिकतोन्मुख हो गया था। उस समय स्वकीया को केवल सन्तानोत्पत्ति का साधन माना जाता था जबकि कामानन्द-लाभ के लिए परकीयाओं और वैश्याओं का आश्रय ग्रहण किया जाता था। भारतीय शृंगारी कवियों ने वैश्याओं को तो इतना स्थान नहीं दिया किन्तु परकीया को अत्यधिक प्रश्रय प्रदान किया है। इन कवियों को ऐसा करने की नैतिक अनुमति संभवतः काम-शास्त्रीय ग्रन्थों से मिली होगी। रीतिकालीन शृंगारी कवि के लिए बहुधा कहा जाता है कि उसने राधाकृष्ण के स्मरण के बहाने परकीया का ही चित्रण किया है किंतु हमारे विचारानुसार उसे भी नैतिक समर्थन कदाचित् इन्हीं ग्रन्थों से मिला होगा। अतः जब भी रीतिकालीन शृंगारी साहित्य के नायिका-भेद, दूतीकर्म मिलन स्थल, अभिसार आयोजन, बालाओं के हाव भावों, शृंगार चेष्टाओं एवं पारस्परिक प्रेम व्यवहारों का अध्ययन किया जाए, उस समय कामशास्त्रीय ग्रन्थों की पृष्टभूमि को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

काम शास्त्रीय संदर्भ में साहित्य का अध्ययन केवल शृंगार साधना के सम्यक् अवबोध के लिए ही आवश्यक नहीं प्रत्युत् मध्य युग के भक्ति साहित्य के अध्ययन में भी सहायक है। आज तक बेचारे तुलसीदास को नारी को ताड़न का अधिकारी बताने के लिए अनेक समाज शास्त्रियों और साहित्य के आलोचकों की कठोर निन्दा का पात्र बनना पड़ा है जब कि नारी के प्रसंग में 'ताड़न' काम शास्त्र की एक ऐसी विशिष्ट क्रिया का सूचक है जो यौन-उद्दीप्ति के लिए आवश्यक है। काम शास्त्र में इस शब्द की स्वतन्त्र व विस्तृत चर्चा की गई है। इसी प्रकार पद्मावत में मधुयामिनी मिलन के अवसर पर रत्नसेन और पद्मावती के बीच में आयोजित नाना प्रश्नों व पहेलियों को हिन्दी के कई आलोचकों ने अप्रणयोचित और अनैतिक कहा है, जबकि वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। इस प्रकार के प्रेमालापमय प्रश्नों अभिसारिकाओं के स्वागत, सखियों द्वारा नायिका को रतिकक्ष तक पहुंचाया जाना तथा प्रेमी-प्रेमिकाओं के अन्य अनेक भद्र अभद्र व्यवहारों का प्रेरणा स्रोत काम शास्त्र है। इसी प्रकार कुछ आलोचकों ने खण्डिता मानिनी के प्रसादनार्थ रसिकराज नायक की ओर से की गई पाद प्रणति को अप्रणयोचित अनैतिक और असामाजिक कहा है। वास्तव में पाद प्रणति केवल कामशास्त्रीय मर्यादा ही नहीं बल्कि यौन दृष्टि से कामोत्तेजक भी है। प्रणय जगत में प्रेमी द्वारा प्रेमिका के 'पांव पलोटना' या 'तलवे सहलाना' जैसे मुहावरों का सही अर्थ काम शास्त्रीय संदर्भ के बिना नहीं समझा जा सकता है। इसी प्रकार 'सोने में सुगंध' का ठीक अर्थ काम शास्त्रोक्त पद्मिनी नायिका के गुणों को बिना ध्यान में रखे पूर्णतः अवगत नहीं हो सकता। अस्तु।

अन्त में हम कह सकते हैं कि भोग वृत्ति के चित्रण में काम शास्त्रीय विधान शताब्दियों से भारतीय शृंगारी कवि के लिए पथ प्रदर्शक का काम करते रहे हैं और हिन्दी के रीतिकाल का शृंगारी-कवि भी उन मर्यादाओं और परम्पराओं से बराबर प्रेरित व प्रभावित होता रहा है।

●

अध्यक्ष संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय,
बिलासपुर हि० प्र०)

पुस्तक समीक्षा

देव-संस्कृति का सशक्त चित्रण

—तुलसी रमण

पुस्तक : हिमाचल में पूजित देवी देवता
लेखक : मौलू राम ठाकुर
पृष्ठ : १७०
मूल्य : ३५ रुपये
प्रकाशक : ऋषभ चरण जैन एवं सन्तति, नई दिल्ली-२

हिमाचल प्रदेश का जनजीवन प्रमुख रूप से देवी-देवताओं से जुड़ा है। कहावत प्रसिद्ध है--देओ राज अर्थात पहले देवता फिर राजा या देवता का राज्य। प्रत्येक गांव या ग्राम समूह का अपना देवता होता है, जिसका मन्दिर सम्बन्धित क्षेत्रों के लोगों के लिए पूजा स्थान के अतिरिक्त एक संस्था या केन्द्र के रूप में भी होता है। धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समूचा जनजीवन देव मन्दिर के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। देवताओं के अस्तित्व से सम्बन्धित विभिन्न कथाएं लोक में प्रचलित हैं। जिनमें क्षेत्रीय इतिहास तथा लोकाचार निहित है। इस प्रकार सारी जीवन पद्धति देवी देवताओं से प्रभावित होने पर देव भावना और देव प्रथा का महत्व स्वयं सिद्ध है। लेकिन देवी भूमि कहलाने वाले प्रदेश में इन महत्वपूर्ण व रोचक विषयों पर कुछ शोध ग्रन्थों या पत्र पत्रिकाओं में सीमित लेखों के अतिरिक्त अपेक्षित अध्ययन व अनुसंधान अभी तक नहीं हो पाया। इसलिए महत्वपूर्ण विषय को लेकर 'हिमाचल में पूजित देवी-देवता' नामक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में ठाकुर साहिब का यह सर्वप्रथम स्तुत्य प्रयास कहा जा सकता है।

पुस्तक को प्रमुख रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। पहले भाग में—"देव भावना तथा हिमाचल में देव प्रथा" शीर्षक के अन्तर्गत पहले देव भावना को स्पष्ट करते हुए आर्यों की देव भावना और वैदिक देवताओं का परिचयात्मक विवेचन पौराणिक त्रिदेव के संक्षिप्त वर्णन सहित किया गया है। इसके पश्चात हिमाचल में देव प्रथा को सोदाहरण प्रतिपादित किया गया है। इस वर्णन में यहां पूजे जाने वाले भू-देवता, नाग, पौराणिक त्रिदेव विभिन्न देवियों तथा अन्य ग्राम-देवताओं से सम्बन्धित परम्पराओं की व्याख्या हुई है। इसमें जन जातीय क्षेत्रों को छोड़कर शेष सारे हिमाचल की देवप्रथा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। देवताओं

की शासन पद्धति पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने गूर पुजारी या पुजियारा, कारदार, भण्डारी, कठियाला या कटवाल, कायथ, कहार आदि देवता के कार-करिन्दों के कर्त्तव्य एवं अधिकारों का रोचक वर्णन किया है। इस प्रकार ५४ पृष्ठों के इस प्रथम भाग में देवभावना व देव प्रथा की पूरी जानकारी मिल जाती है।

दूसरा भाग कथात्मक है। इसमें हिमाचल के विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित २१ लोक प्रचलित प्रसिद्ध कथाएं है। वास्तव में हिमाचल में असंख्य देवी-देवता हैं और उनकी अपनी-अपनी कथाएं, गाथाएं हैं। उनमें से लेखक ने देवता की प्रसिद्धि और कथा की रोचकता को दृष्टि में रखते हुए चयन किया है। पहली कथा में सृष्टि की रचना और किन्नर राजा युकुन्तरस की सुन्दर कन्याओं गोरे और गंगे से शिवजी के विवाह का वर्णन है। इसके बाद कुल्लू दशहरे के देवाधिपति रघुनाथ, मलाना के जमलू (जमदग्नि) तथा बाणासुर कुल्लू क्षेत्र की प्रसिद्ध हिडिम्बा देवी, नाग देवता, भीणा और उसकी जोगिन, नेऊली देवी तथा गहरी देवता से सम्बन्धित रोचक तथा सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अलग-अलग कथाएं हैं। महासूवी क्षेत्र की देव कथाओं में से बौठा, बाशिक तथा चालदा इन चार महासू देवताओं के साथ चूड़धार के शिर्गुल, रोहड़ू के शिकड़ू देवता, कोटगढ़ के चतुर्मुख, कुठाण के डोमेश्वर तथा सधान के नाग देवताओं की चमत्कार पूर्ण कथाएं सम्मिलित की गई हैं। चम्बा की सात देवी बहिनों, पांगी की भगवती मिघल देवी, बिलासपुर की नैना देवी तथा रेणुका माता की कथाओं सहित मण्डी क्षेत्र के प्रसिद्ध देवता कमरू नाग, मण्डी और कुल्लू के सीमावर्ती क्षेत्र के हरंगू नारायण तथा प्रसिद्ध गूगा जहर पीर की लोक कथाएं देवताओं के प्रति लोगों की आस्था तथा विश्वास को व्यक्त करती हुई देवताओं के चमत्कारों का बखान भी करती हैं। देवी-देवताओं में लोगों का विश्वास आज के वैज्ञानिक युग में अन्ध विश्वास भी कहा जाने लगा है। लेकिन इन कथाओं को पढ़ने से लोगों द्वारा इन देवताओं की पूजा के प्रारम्भिक कारणों तथा इसकी आध्यात्मिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को काफी हद तक समझा जा सकता है।

इस प्रकार की कथाएं सर्दियों में बूढ़े बच्चों को सुनाते हैं। नानी-दादी का इस परम्परा को आगे बढ़ाने में विशेष योग रहा है। इनमें जहां एक ओर पौराणिक पक्ष उभरता है वहा विभिन्न संदर्भों में लोकाचार के दर्शन भी होते हैं। कहावत प्रसिद्ध है—'कथा औह कथणे दे' अर्थात कथा कथनी में होती है। उक्त सभी कथाओं को लेखक ने जिस मौलिक लोक-कथात्मक लहजे में प्रस्तुत किया है वह नितान्त सराहनीय है। जहां तक कथाओं की विश्वसनीयता का प्रश्न है, ये लोक प्रचलित हैं, लोक पक्ष ही इसका प्रमाण है।

इस प्रकार ये कथाएं जहां देवभावना व देव प्रथा के जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी हैं, वहां बालकों के लिए मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धक भी है। इससे भी बढ़कर अनुसन्धित्सुओं के लिए विस्तृत क्षेत्र व सामग्री प्रस्तुत करती है। क्योंकि हिमाचल के जनजीवन को देवभावना से पृथक् नहीं किया जा सकता, इसलिए यहां से सम्बन्धित किसी भी विषय के अनुसंधान में देव प्रथा की जानकारी उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हो जाती है।

लेखक ने जिस परिश्रम एवं विद्वता से विभिन्न क्षेत्रों के देवी देवताओं की लोक कथाओं को इकट्ठा करके उन्हें देवभावना व देवप्रथा से सम्बन्धित सशक्त भूमिका के साथ प्रस्तुत किया है इससे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ जाता है। देव प्रथा से सम्बन्धित विषय गहन अध्ययन एवं अनुसंधान की अपेक्षा रखता है। एक देवता के सम्बन्ध में विभिन्न कथाएं व संदर्भ प्रचलित हैं। देवताओं के पारस्परिक सम्बन्ध, एक देवता की अनेक स्थानों में स्थापना, जन-जीवन पर देवताओं का प्रभाव, तथा राक्षसों व देवताओं का पारस्परिक विरोध ऐसे अनेक विषय है जिन्हें एक पुस्तक में प्रतिपादित करना संभव नहीं। फिर भी यह कहा जा सकता है कि लेखक ने विवेचनात्मक और कथात्मक दोनों प्रकार की जानकारी पूर्ण सामग्री का इस पुस्तक में समावेश करके इः क्षेत्र के लेखकों व शोधकर्ताओं का मार्ग प्रशस्त किया है।

कथाओं पर आधारित ग्यारह रेखा-चित्रों तथा सुन्दर आवरण से पुस्तक की शोभा बढ़ी है। प्रूफ शोधन या सूचनाओं को एकत्र करने की त्रुटियों के फलस्वरूप कुछ स्थान नामों में विकार आया है। पुस्तक बढ़िया मुद्रण और अच्छे कागज से आकर्षक बन पाई है।

●

भाषा एवं संस्कृति विभाग
हि० प्र० शिमला-१

संगीत, नाटक और नृत्य में अकादमी की गतिविधियां

मास अप्रैल, ८२ से मास सितम्बर, ८२ तक संगीत, नाटक और नृत्य के क्षेत्र में हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा निम्नलिखित कार्य आयोजित किए गए :—

प्रदेश के लोक संगीत, नृत्य पर आधारित डाकूमैण्टरी फिल्म

प्रदेश के संगीत और नृत्यों आदि पर फिल्में बनाने की योजना के अन्तर्गत चम्बा, कांगड़ा और मण्डी के कुछ लोकगीतों और नृत्यों को लेकर एक डाकूमैण्टरी फिल्म बनवाने का कार्य आरम्भ हुआ। इस डाकूमैण्टरी रंगीन फिल्म बनाने का कॉन्ट्रैक्टर फिल्म-ऐज बम्बई के प्रोड्यूसर श्री वीरेन्द्र द्विवेदी को दिया गया। फिल्म की लम्बाई १५०० फीट तक होगी। मास अप्रैल-मई में शूटिंग कार्य किया गया। फिल्म निर्माणाधीन है तथा शीघ्र बनकर सामने आ जाएगी।

रंगमंच परिचर्चा के अन्तर्गत एक वार्ता का आयोजन

हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा दिनांक ७ जून, १९८२ को शिमला के टाऊन हॉल में 'रंगमंच परिचर्चा' के अन्तर्गत 'मंच और रेडियो अभिनय में सामानताएं और असमानताएं' विषय पर एक वार्ता का आयोजन किया गया जिस पर बाद में परिचर्चा की गई। वार्ताकार डॉ० प्रकाश सयाल थे।

अकादमी के सचिव महोदय श्री एम० आर ठाकुर ने डॉ० प्रकाश सयाल का परिचय देते हुए कहा कि इनका परिचय या तारीख का मोहताज नहीं हैं आप सभी भली प्रकार जानते हैं।

डॉ० प्रकाश सयाल मंच और रेडियो अभिनय के तुलनात्मक अध्ययन में पी० एच० डी० हैं। पंजाबी रेडियो तथा दूरदर्शन जालन्धर के एक सुप्रसिद्ध अभिनेता, दूरदर्शन जालन्धर के 'बीस सवाल' कार्यक्रम के कम्पीयर, दी ट्रिब्यून के 'एरियल एण्ड एन्टीना' कॉलम के लेखक – समीक्षक एक विद्वान निष्पादन कला के सशक्त समीक्षक, तथा संगीत नाटक अकादमी चण्डीगढ़ के सदस्य हैं।

डॉ० सयाल ने अपनी वार्ता में कहा—'एक तरीका है कि पूर्ण अभ्यास करके मंच में जाया जाए, दूसरा तरीका है कि इम्प्रोवाईज (Impovise) किया जाए यानि कि फिबदी अर्थात मौके पर जो बात आए कह दी जाए। जर्मन थियेटर में स्वप्न द्वार फिलास्फर के जमाने में

उन्जाल मान एक निर्देशक और अभिनेता थे। मंच पर कुछ लफ्ज भूल जाया करते थे। क्यू(Cue) देना क्योंकि जरूरी था अतः क्यू देने के लिए २० संवाद बोले गए, फिर कहीं २१ वें संवाद पर क्यू दे पाए। वह आदमी घबरा जाता था। उसे कहा गया 'भई तुम्हें बिलकुल इम्प्रोवाइज नहीं करना है', उसने कहा 'महोदय कान को हाथ लगाता हूं आज नहीं करूंगा'। दूसरे दिन फिर नाटक हुआ उन दिनों ऐसा रिवाज था, मंच पर घोड़ा ले जाना था। घोड़ा मंच पर ले जाया गया। घोड़े को मंच पर काल अप नेचर (call up nature) आई। घोड़ा क्योंकि किसी निर्देशक या रंगमंच के नियमों का गुलाम है नहीं, अतः उसने लीद कर दी तो उन्जाल मानने जोर से कहा 'कम्बखत बेवकूफ नाजिया तुम्हें यह नहीं पता कि इम्प्रोवाइज बिलकुल नहीं करनी थी, नाजिया घोड़े का नाम था।

इसलिए मैंने सोचा कि इम्प्रोवाइज बड़ी खतरनाक चीज है, पूरा अभ्यास भी नहीं करना चाहिए अतः आज के विषद के लिए कुछ सूत्र नोट कर लिए जाए और आप को उसकाने की कोशिश की जाए।

शिमला में कुछ अव्यवसायी कलाकारों से थोड़ी सी बातचीत भी हुई। ऐसा महसूस किया गया कि मंच के लोग रेडियो अभिनय को तथा रेडियो वाले लोग मंच के अभिनय को कुछ नहीं समझते। रेडियो वाला यह महसूस करता है कि मंच पर प्रकाश फेंकते हैं, रूप-सज्जा होती है, वगैरह-वगैरह, अतः यह वास्तविक या स्वाभाविक अभिनय तो है नहीं। दोनों ही ठीक नहीं हैं। बात को यूं ही बढ़ाया जा रहा है। बात बढ़ाने से एक रुबाई याद आई।

अब न उलझी हुई हालात से डर लगता है,
और न जमाने की रश्म भाव स डर लगता है,

यह जो हर बात को अफसाना बना देते हैं,
दरअसल इन्हीं हजरत से डर लगता है।

सबसे अधिक उत्तेजित बात कह रहा हूं। उसमें शेक्सपेरियन मंच के अभिनेता सर जॉन गील गूड का वास्ता दे रहा हूं। मंच के लिहाज से पश्चिम में विशेषत इंगलैंड तथा पश्चिम यूरोप में यह बात रही कि जब तक ग्रीक या शेक्सपेरियन नाटकों में विशेषतः दुखान्त नाटकों में यदि कोई अभिनय नहीं कर पाए, वह अभिनेता, क्लासिक अभिनेता या आधुनिक क्लासिक अभिनेता नहीं गिना जाएगा। सर जॉन गील गूड ने अभिनय के खुदा स्टेनिसलेवेस्की की एक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि अभिनय कला का आधार एक ही है। अलग-अलग माध्यय में समंजित करने का काम अभिनेता का है और यही अभिनय कला के प्रशिक्षण का आधार है। थियेटर चार प्रकार के हैं :— स्टेज थियेटर, फिल्म थियेटर, रेडियो थियेटर तथा टी० वी० थियेटर, जिसमें टी० वी० कनिष्ठतम है। मूल शोरमा एक है अभिनेता को चारों माध्यम का ज्ञान होना चाहिए। स्टेज अन्य माध्यमों की तुलना में एक अद्वितीय माध्यम है। अभिनेता और दर्शक एक दूसरे को देख सकते हैं। कलाकार सजीव हैं। दर्शक भी सजीव हैं। यह तीन आयाम माध्यम हैं। स्टेज का यह एक अद्वितीय पन है

जो अन्य माध्यम में नहीं है। फिल्म के भी दो आयाम हैं। टी० वी० दो आयाम हैं। मैं इसे थोड़ा सा सवा दो या ढाई आयाम भी कहता हूं, परन्तु अभिनेता तीन आयाम नहीं हो सकता। टी०वी० देखने के लिए एक हद तक दूर बैठा जा सकता है, वर्ना नजदीक ही बैठना होता है। रजाई ओढ़े, खाना खाते समय तथा अन्य निजि जीवन में निकटता आ जाती है। इसलिए मैं इसे सवा दो या ढाई आयाम कहता हूं परन्तु स्पर्श वाली निकटता, जो स्टेज थियेटर में है, टी० वी० में नहीं आ सकती। रंगमंच विशेषतः पश्चिम में कई रूप अख्तियार कर चुका है। अभिनेता एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है, दर्शकों के बीच में चला जाता है, दर्शकों में से उठकर आता है आदि आदि। यही एक विशेषता है जो स्टेज को जिन्दा रखे हुए है - और ता-अबद इसको जिन्दा रखेगी जबकि साथ-साथ रेडियो, फिल्म और टी० वी० आ गया, दर्शक कम हो गए, टिकटें कम बिकती हैं, पास आगे से अधिक दिए जाते हैं, पास देने के बावजूद भी लोग कम आते हैं —परन्तु क्योंकि स्टेज जीवित रंग-मंच है और जीवित अनुभव होता है इसलिए यह विशेषता इसे जिन्दा रखेगी। रेडियो थियेटर स्टेज थियेटर के बरखलाफ़, परन्तु एक दूसरे के बनाम नहीं, बिना आंख का थियेटर है। अभिनेता और दर्शक एक दूसरे को नहीं देख सकते। वहां का माहौल यथार्थ परख नहीं है। चार दिवारी के अंदर घुटन है। दूसरे कमरे में बैठा प्रोड्यूसर सांकेतिक ईशारे करता है। केवल माईक्रोफोन से बात करनी होती है। एक बार सुप्रसिद्ध स्टेज और फिल्म की अभिनेत्री हैलन को रेडियो में बुलाया गया। उसे एक साक्षात्कार में अपना फन इजहार करने के लिए अपने जीवन के सबसे बढ़िया टुकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। शेक्सपीयर के नाटक ओथैलो के एक टुकड़े को प्रस्तुत करने के लिए हैलन अभिनेत्री ने कहा। वह रेडियो में पहली बार आई थी। उसने कहा कि उसके पति कहां हैं। उसे कहा गया कि माईक को ही अपना पति समझ कर संबाद कहिए। हैलन ने कहा' इस माईक से तो मेरे पति बढ़िया है'। खैर ····· रेडियो में सब कुछ माईक ही है।

माईक्रोफोन एक शैतान कीमती उपकरण है। जाआर्ज बनोई शा ने कहा है कि माईक के आगे आवाज में थोड़ा सा झूटा पन आ जाए तो श्रोता एक दम इस बात को जान लेंगे और श्रोता के मन में जो कल्पना लोक का ताना बाना बन रहा है, वह नष्ट हो जाएगा।

दरअसल रेडियो और स्टेज दोनों माध्यम ही अपनी-अपनी जगह विशिष्ट है और दोनों का नाट्य कला में विशिष्ट योगदान रहा है।

रेडियो अभिनेता एक विशेष प्रकार से प्रेरित रहता है। वह यह सोजता है कि मुझे एक नहीं, पचास नहीं बल्कि कई हजार श्रोता सुन रहे हैं। स्टेज में अभिनेता को दर्शकों की तरफ से न दिखाई देने वाली निरन्तर प्रवहमान सूक्ष्म धाराएं आती हैं तथा उनका आपस में प्रतीय प्रक्रिया होती रहती है। अभिनेता को मालूम हो जाता है कि दर्शक खाली चेहरे दे रहे है या आखिर वालों को सुनाई नहीं दे रहा अतः इस तरह मंच पर अभिनेता बुद्धिमता से कुछ समन्वय स्थापित कर लेता है ताकि दर्शकों को वह दिखाई, सुनाई दे तथा उनके चेहरे खाली न रहे। मंच पर यह धाराएं तथा प्रक्रियाएं कई बार अभिनेता के लिए खतरनाक साबित होती हैं। दर्शकों के खाली चेहरों से वह निरुत्साहित हो जाता है। रेडियो में यह सूक्ष्म धाराएं नहीं मिलती, अतः अभिनेता

को अत्यधिक कल्पनाशील होना पड़ता है। रेडियो थियेटर संकेतात्मक है। संस्कृत रंगमंच से रेडियो थियेटर मिलता जुलता है। संस्कृत रंगमंच में जैसे घोड़े की सवारी, पंखा चलना, पहाड़ पर चढ़ना तथा अन्य कई कार्य संकेतात्मक होते हैं जो मूकाभिनय द्वारा प्रस्तुत होते हैं तथा कई बार वातावरण, घटनास्थल आदि को केवल शब्दों द्वारा संकेतात्मक बतलाया जाता है। इस तरह कुछ बातों में रेडियो थियेटर संस्कृत थियेटर से मिलता जुलता है।

अभिनेता के मुख्य दो कार्य हैं। भूमिका की व्याख्या करना और दूसरा उसकी अभिव्यक्ति करना। जैसे यूनैस्को के चार्टर में युद्ध के बारे में कहा है :—

'युद्ध का जन्म पुरुषों के मस्तिष्क में होता है अतः वही स्थान है जहां शान्ति की रक्षा के उपाय किए जाएं' उसी तरह :—

'हर अभिनय, हर चरित्रांकार का जन्म अभिनेता के मस्तिष्क में होता है।

अतः वही स्थान है जहां चरित्रांकन को सुदृढ़ किया जाए यदि अभिनेता किसी भूमिका को समझ नहीं पाएगा तो वह उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकता। रेडियो की तुलना में स्टेज में थोड़ा ऊंचा बोलना पड़ता है ताकि हाल में आखिर में बैठे दर्शक को भी सुनाई दे। निम्न संवाद रेडियो में तथा स्टेज में कैसे बोला जाएगा इसका व्यवहारिक रूप प्रस्तुत है :—

'मैं कहता हूं कि मैं तुमसे इतना प्यार करता हूं कि मैं आसमान से तारे तोड़ कर तुम्हारे कदमों में रख दूं लेकिन तुम एक बार हां कर दो, तुम एक बार मेरी बात मान जाओ'।

रेडियो में इस संवाद को यदि थोड़ा ऊंचा बोला जाए तो यह वहां गलत है। मंच में इस संवाद को यदि थोड़ा धीरे बोला जाए तो यह यहां गलत है। अतः रेडियो और स्टेज की तुलना में दोनों एक दूसरे से बढ़िया या गलत नहीं बल्कि दोनों ही अपनी तरह से सही और सबल हैं। स्टेज थियेटर अनेक प्रकार का है। कोई भी प्रकार है रंगमंच की अपनी औपचारिकता और लोकाचार होता है और अभिनेता और दर्शक दोनों इसे जानते तथा मानते हैं तथा दोनों के बीच जबानी अनुबन्ध तथा समझ होती है। कहने का तात्पर्य प्रस्तुत किए संवाद से है कि जब मंच पर अभिनेता अपनी प्रेमिका से जोर से प्यार करता है तो उस समय कोई यह नहीं कहता कि वह सरेआम प्यार कर रहा है। १०००-१५०० के दर्शकों में वह धीरे से प्यार नहीं कर सकता। रेडियो में और बात है। अतः दोनों ही माध्यम सबल हैं।

सिद्धांत के रूप में एक बात यह है कि कोई भी बड़ा कलाकार नियमों को नहीं देखता, बल्कि नियम उसके दास होते हैं। अमजदखां अभिनय कर रहा है या विलायत खां सितार बजा रहा है तो वह किसी बड़े डाक्टर की पुस्तक देखकर नहीं बजायेगा, वह तो अपनी मस्ती में बजाएगा

जिसे सुनकर प्रोफैसर या विद्वान अपनी पुस्तक लिखेगा तथा सिद्धान्त का प्रतिपादन करेगा और शास्त्र की रचना करेगा। सिद्धान्त अभ्यास का अनुगामी है। एक बड़ा साधक नियमों को पढ़ता है, सीखता है तथा जैसे-जैसे महान साधक बनता है, महान अभिनेता बनता है, उतना ही वह सिद्धान्तों को भूलता जाता है।

मंच में अबपन की अनुभूति होती है 'ईडियस' की कहानी २५०० साल पहले की है उसने अपनी अज्ञानता में अपने पिता को, मारकर अपनी माता से शादी कर ली। अगर अभिनेता अच्छा होगा तो अवश्य ही वह इस बात को महसूस करा देगा कि उसे जब पता लगता है तो कैसे उसकी आत्मा को ठेस पहुंचती है। उस समय दर्शक इस बात को भूल जाते हैं कि वह हॉल के अन्दर बैठे हैं और कुछ समय पश्चात् उन्हें अन्य कार्य करने हैं बल्कि उन्हें यह महसूस होता है कि यह घटना अभी इसी समय जीवित रूप में घटित हो रही है। रेडियो में अभिनेता एक आत्मीय रंगमंच (intimate theatre) में काम करता है। वातावरण वास्तविकता महसूस न होने पर भी माईक्रोफोन के माध्यम से ऐसा महसूस होता है कि अभिनेता वायरलैस सैट के बीच में बैठा हुआ है। अभिनेता और दर्शक का सम्बन्ध इस आतमीयता के कारण परस्पर एकांगी हो जाता है। मंच में सहभागी अनुभव होता है। एक थोड़ा सा हंसता है, दूसरा हंसता है, इस तरह सारे हॉल में हंसी फैल जाती है। प्रतियोगिताओं में कई बार क्या होता है कि अभिनेता अपने एक दोस्त को कहे रखता है कि 'अमुक संबाद में मैं खड़ा हो जाऊंगा तो ताली मारना'। इस तरह एक ताली से पूरे साल में (snow ball) हो जाता है। साहियता का मनोविज्ञान दर्शकों में रहता है। दर्शक समय निकालकर, टिकट खरीद कर भेस बना कर आनन्दित होने लगता है। क्योंकि एक सामाजिक अवसर या समागम हो जाता है अत: दर्शक सामोपन के अनुभव का आनन्द लेता है। रेडियों में ऐसा नहीं हैं। जो बात या मजाक चुटकला सब के बीच में आता है, जरूरी नहीं कि अकेले में आए। अकेले में श्रोता अपनी सभी शक्तियां केन्द्रित रखता है। कोलरिज् ने अपने समीक्षात्मक प्रस्ताव में 'अविस्वास का इच्छित विलन्वन' के बारे में जिक्र किया है। क्योंकि दर्शक आनन्दित होने आए हैं अतः हाल में इस सामाजिक अवसर पर सांझे हंस लेते हैं।

स्टेज में रूप सज्जा, वेशभूषा आदि तकनीकी सहयोग से एक अभिनेता रूपान्तरित होकर प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला बन जाता है। एक साधारण लड़की गलैमरस लगने लगती है। परन्तु रेडियो में रूपान्तरित होने का कोई मौका नहीं। अपना-अपना मिजाज व पसन्द होती है, परन्तु मेरे नजरिये से लोगों का सामान्य दृष्टिकोण है कि वे हेमामालिनी को एक अच्छी अभिनेत्री नहीं मानते, क्योंकि वह गलैमर गर्ल-जीम-गर्ल है, इसलिए आसानी से पास हो जाती है और भाती है। अगर वह रेडियो में आ जाए तो कभी भी न भाए।

सबसे अधिक उत्तेजित बात यह है कि बहुत से लोग कहते हैं कि रेडियो अभिनय कोई अभिनय न होकर स्वरों का जाल है। कुछ स्वर ट्रिक् सीख लो, उसमें उतार चढ़ाव ले आओ, तो वह रेडियो अभिनय है। आवाज एक स्वतन्त्र और स्वायत पहचान नहीं है परन्तु कुल व्यक्तित्व का एक अंग है। जैसी मनःस्थिति है, वैसी ही आवाज होगी। खुदा न खास्ता कोई दुर्घटना हो जाए तो

वह खुशी की आवाज नहीं निकलेगी जिससे यह कहा जा सके कि रेडियो अभिनय स्वरों का जाल है।

'अगर यह स्वरों का जाल है तो मैं इसके लिए चुनौती देता हूं'।

आवाज के पीछे मन है। चाल, मुद्राएं, चेष्टाएं तभी उत्प्रेरित होंगी यदि मनःस्थिति सही है।

जान गिल गूड ने भाई वाल गिल गुड बी० बी० सी० रेडियो नाटक के तात हुए हैं। बी० बी० सी० रेडियो नाटक उनके होते हुए, और आज भी, बहुत पनपा है। इसके दो कारण हुए हैं। एक बी० बी० सी० की बहुत अच्छी किस्मत तथा दूसरा स्वयं वाल गिल गूड है, जो बी० बी० सी० में ३० साल तक रेडियो नाटक के विभागाध्यक्ष रहे हैं। उन्होंने कहा है कि अच्छे और सच्चे रेडियो अभिनेता को पूरी तरह से अपने फन को निभाना है। अगर एक घण्टे का नाटक है तो अभिनेता इतना पसीना-पसीना होकर निकलेगा जैसे महीने से मेहनत मुशक्कत कर रहा हो।

किसी भी नाटक की प्रस्तुति में दर्शकों की सहभागिता होती है और हर प्रस्तुति के अपने मुरीद होते हैं। मंच में सहभागिता इस प्रकार रहती है कि दर्शकों की आंखों में आंसू आ जाते हैं तथा कई सचमुच रो पड़ते हैं, कई उठकर नजदीक चले जाते हैं तथा कुछ बातें करने वाले को डांटते हैं ताकि उनकी प्रस्तुती में एकाग्रता बनी रहें। आज के नाटक में तो अभिनेता दर्शक के बीच में से आ गया है। आजकल 'थियेटर स्पेस को वैसे भी परिष्कृत किया गया है। प्रोजिनियम स्टेज को आजकल प्राय: पसन्द नहीं करते क्योंकि अभिनेता और दर्शक के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती है। कई प्रकार के थियेटर परिष्कृत हुए हैं जैसे ऐरिना, खुला, गुरिला, गैरेज, गली, ब्लैक एण्ड व्हाईट इत्यादि। थियेटर के एक वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध आलोचक ऐरिक बेन्टली ने कहा हैं कि कई प्रकार के थियेटर हो गए हैं, थियेटर ऑफ कोमयूनिजम, थियेटर ऑफ सोशिलिजम इत्यादि, परन्तु इस समय थियेटर ऑफ हयूमेनिजम की सबसे अधिक आवश्यकता है।

रेडियो में भी श्रोता की अभिनेता के साथ सहभागिता होती है। रेडियो अभिनेता श्रोता की कल्पना पर ही अपनी भूमिका अभिव्यक्त करता है तथा उनकी कल्पना को उकसाता और भड़काता है। कल्पना को उसकाने के लिए शब्दों के साथ संगीत और ध्वति का भी प्रयोग किया जाता है। सुनने वाले की कल्पना का उद्दीपन किया जाता है तथा धीरे २ श्रोता अभिनेता को सहयोग देने लगता है। रेडियो नाटक में अभिनेता चुस्ती से शरीक होता है, वर्ना नाटक असफल हो जाता है। 'वर्डसवर्थ ने मनस्थ तथा अन्तर्मुखी आंख के संदर्भ में लिखा है'। इस आंख में सारा नक़शा श्रोता के मन में आ जाता है।

'अब तो जाते हैं खुदकदे से दूर, फिर मिलेगें अगर खुदा लाया'।

प्रश्नोत्तर सत्र में उच्चारण और वाणी के संदर्भ में डॉ० प्रकाश सयाल ने कहा कि यह दोनों ही रेडियो में अति आवश्यक हैं क्योंकि वह हर चीज शब्द है, संगीत और ध्वति का तो हर जगह खामखाह प्रयोग नहीं किया जाऐगा। मंच में तो इस बात को छुपाया जा सकता है।

शिमला के अव्यवसायिक कलाकार श्री जय राज ने टी० वी० थियेटर के अभिनय और दर्शक के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न किया गया। इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा कि अभिनेता केवल दर्शक के लिए नहीं बल्कि अपने लिए भी करता है इस बात को जोर देते हुए कहा गया। अगर प्रस्तुती अच्छी होती है तो दर्शक तो ३ या ४ दिन में भूल जायेगा, परन्तु हम तो उसे कई साल तक नहीं भूलेंगे। डा० सयाल ने जानकारी देते हुए कहा कि टी० वी० में दो प्रकार का अभिनय किया जाता है। एक रैप्रिजैन्टेटिव जिसका स्टैनिसलवैसकी ने अपनी एक पुस्तक एन् एक्टर प्रिपेयरज्, में जिक्र किया है तथा दूसरा प्रिजैन्टेटिव। प्रोजिनियम थियेटर की तो चौथी दीवार है जिसको दर्शकों की सुविधा के लिए हटा दी गई है और अभिनेता इस बात से अनभिज्ञ रहता है, परन्तु टी० वी० में अभिनेता अपनी कल्पना से जानता है कि दर्शक उसे देख रहे हैं। इसलिये प्रिजैन्टेटिव भी होती है। कई बार कार्यक्रम रिकार्ड न करके सीधे रूप से भी पेश किए जाते हैं। दूसरी बात पर डा० सयाल ने कहा कि 'मैं नहीं मानता कि हम अपने लिए ही करते हैं, यदि अपने लिए ही करते हैं तो हम ताली न बजने पर निरुत्साहित क्यों हो जाते हैं। वर्ना तो हम अपने लिए भी करते हैं तभी नियत कार्य करने का बीड़ा उठाते हैं।

प्रदेश के प्रसिद्ध लेखक श्री राम दयाल नीरज ने प्रश्न किया कि मान लो एक अन्धा है तो वह रेडियो में आप शब्दों के अलावा इसे कैसे प्रस्तुत करेगें। डा० सयाल ने कहा कि इसके लिए अभिनेता को जीवन में ऐसे व्यक्तियों को देखना और समझना होगा क्योंकि जो अन्धा होता है उसका प्रायः बोलने का तरीका अन्य को तुलना में भिन्न होता है। वैसे रेडियो तो एक ऐसा माध्यम है जो मुख्यतः शब्दों पर टिका है, अतः नाटक का आलेख तैयार करते समय उसे ऐसे संवाद देने के लिए पूर्ण रूप से सर्तक रहना पड़ेगा।

एक अन्य अभिनेता श्री कैलाश आहलूवालिया ने प्रश्न किया कि क्या थियेटर आफ एबसर्ड के नाटक रेडियो पर किए जा सकते है। डा० सयाल ने इस संदर्भ में इन्कार किया।

एक अन्य अभिनेत्री कु० अमला राय ने प्रश्न किया कि क्या रेडियो अभिनेता स्टेज पर भूमिका अदा कर सकता है ? डा० प्रकाश सयाल ने कहा कि रेडियो अभिनेता स्टेज पर भूमिका अदा कर सकता है। इसके लिए अभिनेता को एक या दो नहीं बल्कि सभी माध्यमों में अपने आप को तैयार करना चाहिए। अमेरिका में नाट्य कला के स्कूलों में चारों माध्यमों का प्रशिक्षण दिया जाता है। उन्होंने कहा कि ऐसा हमारे देश में भी होना चाहिए।

कार्यक्रम में लगभग ६० कलाकारों और लेखकों ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रदेश के प्रसिद्ध कलाकार श्री हरीशचन्द्र राय ने की जिन्होंने अपने भाषण में मूलतः इस बात पर जोर दिया कि ऐसी वार्ताएं और परिचर्चा कम से कम कुछ दिनों तक लगातार चलनी चाहिए।

नाटक अन्धायुग का अभ्यास और मंचन

मास मई, १९८२ के अन्तिम सप्ताह में श्री धर्मवीर भारती कृत नाटक अन्धायुग का

अभ्यास आरम्भ किया गया। ६ जुलाई, ८२ को नाटक का मंचन काली बाड़ी हाल शिमला में किया गया। इस नाटक में घटनाकाल महाभारत के अठारहवें दिन से लेकर प्रभासतीर्थ में भगवान कृष्ण की मृत्यु तक का है। शिमला के स्थानीय कलाकारों ने इस नाटक में भाग लिए। आलोचकों ने शिमला जैसे स्थान पर ऐसे नाटक को तैयार किए जाने के लिए अकादमी के इस प्रयास को साहसिक कहा है। नाटक में सर्वश्री अवतार कालिया, बी० आर० मेहता, प्रवीण चान्दला, आसुतोष, जगवीर सिंहा, तेज शर्मा, राजन कौशल, मन्दीप सिंह, जयराज कपूर, शेखर भट्टाचार्य, अरुण शीठक, ओमप्रकाश शर्मा तथा श्रीमती प्रेमलता ने अभिनय किया। श्री मोहन शर्मा के संगीत निर्देशक में डा० रवि कान्त सूद ने मधुर गायन किया तथा वादक के रूप में सर्वश्री कंवर सिंह अश्विनी कुमार तथा लोकेन्द्र ने भाग लिया। श्री प्रेम शर्मा और कु० सन्ध्या छाया ने नृत्य का कार्य किया। बालकलाकार के रूप में मास्टर ओमप्रकाश शर्मा और मास्टर विनोद शर्मा ने भाग लिया। मंच और रूप सज्जा श्री ओमप्रकाश सुजानपुरी ने तथा प्रकाश परिकल्पना श्री डी० पी० घोषाल ने की। वेशभूषा परिकल्पना और नाटक का निर्देशन अशोक कुमार हंस ने किया। शिक्षा भाषा एवं संस्कृति मन्त्री एवं अध्यक्ष अकादमी श्री सन्त राम मुख्य अतिथि के रूप में पधारे।

बाल नाटक पसीना-पसीना का अभ्यास और मंचन

मास जून, ८२ में श्री विजय तेंडलकर कृत बाल नाटक पसीना-पसीना का अभ्यास किया गया जिसका एक मंचन शिमला के काली बाड़ी हाल में दिनांक १६ जुलाई, ८२ को किया गया। यह मनुष्य जीवन में श्रम तथा पसीने के महत्व पर एक बालोपयोगी हास्यव्यंग्य लघु नाटिका है। शिमला के स्थानीय बालकलाकारों ने भाग लिया। सर्वश्री संजीत शर्मा, अरुण गुप्ता, विनोद शर्मा, सतीव, सुभाष, अजय डोगरा, अजय शर्मा, ओमप्रकाश, श्रवण कुमार एवं कुमारी आभा शर्मा, निर्मला, वन्दना शर्मा, रजनी ने भाग लिया। नाटिका का निर्देशन कु० अमला राय ने किया। दर्शकों ने इसके मंचन पर काफी सराहना की। नाटिका के मंचन के अलावा स्कूल के बच्चों द्वारा एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया जिनमें एकल अभिनय, सामूहिक गीत, गोरखा नृत्य, कथाकलि कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। भाषा एवं संस्कृति विभाग के निदेशक महोदय श्री जे० सी० दत्त मुख्य अतिथि के रूप में पधारे।

मिंजर मेला के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम

चम्बा के मिंजर मेला के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन हिमाचल अकादमी द्वारा दिनांक ३० और ३१ जुलाई, १९८२ को किया गया। इस कार्यक्रम में कुल्लू से एक 'जमदग्नि क्लब' नामक सांस्कृतिक संस्था का एक सांस्कृतिक दल तथा किन्नौर से हिम कैलाश युवक मण्डल 'रिब्बा' नामक संस्था का एक लोक नृत्य दल आमन्त्रित किए गए। दिनांक ३० जुलाई को जमदग्नि क्लब, कुल्लू के सांस्कृतिक दल ने लोक नृत्य और लोक संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किए। लोक नृत्यों में एकल, युगल तथा सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किए तथा लोक संगीत में प्रदेश के अन्य क्षेत्रों के गीत गाए गए। १२ पुरुष कलाकारों तथा ८ महिला कलाकारों ने भाग लिया जिनमें गायन, नृत्य, वादन से सम्बन्धित कलाकार सम्मिलित थे।

दिनांक ३१ जुलाई, १९८२ को कुल्लू के सांस्कृतिक दल तथा हिम कैलाश युवक मण्डल रिब्बा के लोक नृत्य दल का एक सम्मिश्रित सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। रिब्बा के लोक नृत्य दल ने किन्नौर के गीत, नृत्य तथा होरिंगफो (लोक नाट्य) प्रस्तुत किए गए। नृत्यों में एकल युगल तथा सामूहिक नृत्य प्रस्तुत किए गए। इस दल में १३ पुरुष कलाकारों तथा ६ महिला कलाकारों ने भाग लिया।

भरमौर में भरमौर जातर के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम

अकादमी द्वारा चम्बा जिला के भरमौर स्थान में भरमौर जातर के अवसर पर दिनांक १९ अगस्त, १९८२ को गद्दी जनपद के लोक नृत्य और लोग संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए। इस अवसर पर छतराजी तथा रणाटुकोठी से दो लोक नृत्य दल आमन्त्रित किए गए। इन दोनों दलों में केवल पुरुष कलाकारों ने भाग लिया।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों को तकनीकी सहयोग

मणिमहेश कला मन्दिर, शिमला :	वेश-भूषा के रूप में सहयोग :
चम्बा सुधार सभा :	वेश-भूषा के रूप में सहयोग :
पोर्टमोर राजकीय उच्चतर माध्यमिक पाठशाला शिमला :	वेश-भूषा के रूप में सहयो :

●

—अशोक कुमार हंस

अप्रैल स सितम्बर मास तक कवि सम्मेलन व गोष्ठियां

हिमाचल प्रदेश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय रूप सिह

फूल स्मृति दिवस

दिनांक २५.६.८२ को हिमाचल के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रूप सिंह फूल की स्मृति में उनके पैतृक स्थान हमीरपुर में कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता अकादमी उपाध्यक्ष व संसद सदस्य श्री नारायण चन्द पराशर ने की। प्रदेश के विभिन्न कवियों ने अपनी कविता में श्री फूल के जीवन पर प्रकाश डाला तथा उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए साहित्य के प्रति उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर हमीरपुर के जिलाधीश भी उपस्थित थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री पराशर ने बताया कि अकादमी द्वारा हिमाचल के साहित्यकारों को सदैव याद रखने के लिए उनके स्मरण दिवस मनाए जाने का निर्णय लिया गया है।

चन्द्रधर गुलेरी स्मरण दिवस

दिनांक ७.७.८२ को कांगड़ा के पालमपुर तहसील में इस वर्ष का चन्द्रधर शर्मा गुलेरी समारोह मनाया गया। ७ जुलाई सायं एक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें प्रदेश के विभिन्न स्थानों से आए कवियों ने भाग लिया। कवि सम्मेलन में जिलाधीश कांगड़ा मुख्य अतिथि थे। दिनांक ८.७.६२ को गुलेरी जी के सम्बन्ध में लेखक गोष्ठि का आयोजन किया। इस गोष्ठी में गुलेरी जी के जीवन व साहित्य पर प्रकाश डाला गया।

पहाड़ी गांधी शताब्दी समारोह—प्रथम अधिवेशन

इस वर्ष पहाड़ी गान्धी बाबा कांशीराम जन्म शताब्दी समारोह का प्रथम अधिवेशन दिनांक २४ व २५ जुलाई १९८२ को कांगड़ा जिले के बाथू टिपरी में हुआ। इस उपलक्ष में २४ जुलाई सांय ७ बजे कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया तथा १५ जुलाई को लेखक गोष्ठी आयोजित हुई। इस समारोह की अध्यक्षता शिक्षा भाषा एवं संस्कृति मन्त्री श्री सन्त राम जी ने की।

स्वैच्छिक संस्थाओं का सम्मेलन

दिनांक २९.८.८२ को सारे प्रदेश की स्वैच्छिक संस्थाओं को एक मंच पर लाकर विचार विमर्श करने हेतु अकादमी द्वारा इस प्रकार का प्रथम सम्मेलन आयोजित किया गया। सम्मेलन दो सत्र में चला जिसका उद्घाटन संसद सदस्य श्री नारायण चन्द पराशर ने किया। इस सम्मेलन में प्रत्येक संस्था से एक एक प्रतिनिधि ने भाग लिया तथा संस्थाओं की समस्याओं पर

विचार विमर्श किया गया तथा प्रदेश में कला-संस्कृति के क्षेत्र में किए जा रहे कार्य कलाओं पर प्रकाश डाला गया।

अकादमी द्वारा प्रदेश की स्वैच्छिक संस्थाओं को समय-समय पर वित्तीय व तकनीकी सहायता दी जाती है। अप्रैल मास के पश्चात निम्नलिखित संस्थाओं की वित्तीय सहायता प्रदान की गई।

१.	पर्वतीय लोक मंच दाड़वा	...	सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन हेतु।	६०००-००
२.	साहित्य कला परिषद कुल्लू	...	प्रतियोगिताएं व सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन के लिए।	५०००-००
३.	यशपाल साहित्य परिषद नदौण हमीरपुर	...	इन्द्रपाल जयन्ती समारोह के आयोजन हेतु।	१५००-००
४.	नागरी नाट्य स्कूल शिमला	...	जलूस नाटक के आयोजन हेतु।	६५०-००
५.	हिमप्रभात दर्शन शिमला	...	सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए।	६६०-००
६.	मणि महेश कला संगम शिमला	...	मिंजर के उपलक्ष्य में सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए।	२०००-००
७.	यंग फार्मर क्लब बुढ्ढे त० अर्की जिला सोलन	...	सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन हेतु।	३०००-००
८.	ऑल इंडिया आर्टिस्ट एसोशिएशन शिमला	...	साहित्यिक समारोह के आयोजन हेतु।	६५०-००

१. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि० प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

२. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति भाषा अकादमी, क्लिफ-एन-डी एस्टेट, शिमला द्वारा प्रसारित तथा
'कौसर प्रिंटिंग प्रैस', सोलन (हिमाचल प्रदेश) द्वारा मुद्रित।